रामचरितमानस

उत्तरकाण्ड

उत्तरकाण्ड राम कथा का उपसंहार है। सीता, लक्ष्मण और समस्त वानर सेना के साथ राम अयोध्या वापस पहुँचे। राम का भव्य स्वागत हुआ, भरत के साथ सर्वजनों में आनन्द व्याप्त हो गया। वेदों और शिव की स्तुति के साथ राम का राज्याभिषेक हुआ। वानरों की विदाई दी गई। राम ने प्रजा को उपदेश दिया और प्रजा ने कृतज्ञता प्रकट की। चारों भाइयों के दो दो पुत्र हुये। रामराज्य एक आदर्श बन गया। नीचे उत्तरकाण्ड से जुड़े घटनाक्रमों की विषय सूची दी गई है। आप जिस भी घटना के बारे में पढ़ना चाहते हैं उसकी लिंक पर क्लिक करें।

*** मंगलाचरण

*** भरत विरह तथा भरत-हनुमान मिलन, अयोध्या में आनंद

*** श्री रामजी का स्वागत, भरत मिलाप, सबका मिलनानन्द

*** राम राज्याभिषेक, वेदस्तुति, शिवस्तुति

*** वानरों की और निषाद की विदाई

*** रामराज्य का वर्णन

*** पुत्रोत्पति, अयोध्याजी की रमणीयता, सनकादिका आगमन और संवाद

*** हनुमान्‌जी के द्वारा भरतजी का प्रश्न और श्री रामजी का उपदेश

*** श्री रामजी का प्रजा को उपदेश (श्री रामगीता), पुरवासियों की कृतज्ञता

*** श्री राम-वशिष्ठ संवाद, श्री रामजी का भाइयों सहित अमराई में जाना

*** नारदजी का आना और स्तुति करके ब्रह्मलोक को लौट जाना

*** शिव-पार्वती संवाद, गरुड़ मोह, गरुड़जी का काकभुशुण्डि से रामकथा और राम महिमा सुनना

*** काकभुशुण्डि का अपनी पूर्व जन्म कथा और कलि महिमा कहना

*** गुरुजी का अपमान एवं शिवजी के शाप की बात सुनना

*** रुद्राष्टक

*** गुरुजी का शिवजी से अपराध क्षमापन, शापानुग्रह और काकभुशुण्डि की आगे की कथा

*** काकभुशुण्डिजी का लोमशजी के पास जाना और शाप तथा अनुग्रह पाना

*** ज्ञान-भक्ति-निरुपण, ज्ञान-दीपक और भक्ति की महान् महिमा

*** गरुड़जी के सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डि के उत्तर

*** भजन महिमा

*** रामायण माहात्म्य, तुलसी विनय और फलस्तुति
*** रामायणजी की आरती

सप्तम सोपान-मंगलाचरण

श्लोक :

*** केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्। पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं। नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढराममम्॥1।

भावार्थ:-

मोर के कण्ठ की आभा के समान (हरिताभ) नीलवर्ण, देवताओं में श्रेष्ठ, ब्राह्मण (भृगुजी) के चरणकमल के चिह्न से सुशोभित, शोभा से पूर्ण, पीताम्बरधारी, कमल नेत्र, सदा परम प्रसन्न, हाथों में बाण और धनुष धारण किए हुए वानर समूह से युक्त भाई लक्ष्मणजी से सेवित, स्तुति किए जाने योग्य, श्री जानकीजी के पति, रघुकुल श्रेष्ठ, पुष्पक विमान पर सवार श्री रामचंद्रजी को मैं निरंतर नमस्कार करता हूँ॥1॥

*** कोसलेन्द्रपदकन्जमंजुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ। जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृंगसंगिनौ॥2॥

भावार्थ:-

कोसलपुरी के स्वामी श्री रामचंद्रजी के सुंदर और कोमल दोनों चरणकमल ब्रह्माजी और शिवजी द्वारा वन्दित हैं, श्री जानकीजी के करकमलों से दुलराए हुए हैं और चिन्तन करने वाले के मन रूपी भौंरे के नित्य संगी हैं अर्थात् चिन्तन करने वालों का मन रूपी भ्रमर सदा उन चरणकमलों में बसा रहता है॥2॥

*** कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्। कारुणीककलकन्जलोचनं नौमि शंकरमनंगमोचनम्॥3॥

भावार्थ:-

कुन्द के फूल, चंद्रमा और शंख के समान सुंदर गौरवर्ण, जगज्जननी श्री पार्वतीजी के पति, वान्छित फल के देने वाले, (दुखियों पर सदा), दया करने वाले, सुंदर कमल के समान नेत्र वाले, कामदेव से छुड़ाने वाले (कल्याणकारी) श्री शंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥3॥

भरत विरह तथा भरत-हनुमान मिलन, अयोध्या में आनंद

दोहा :

*** रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग। जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम

बियोग॥
भावार्थ:-
श्री रामजी के लौटने की अवधि का एक ही दिन बाकी रह गया, अतएव नगर के लोग बहुत आतुर (अधीर) हो रहे हैं। राम के वियोग में दुबले हुए स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ सोच (विचार) कर रहे हैं (कि क्या बात है श्री रामजी क्यों नहीं आए)।
*** सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर। प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर॥
भावार्थ:-
इतने में सब सुंदर शकुन होने लगे और सबके मन प्रसन्न हो गए। नगर भी चारों ओर से रमणीक हो गया। मानो ये सब के सब चिह्न प्रभु के (शुभ) आगमन को जना रहे हैं।
*** कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ। आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ॥
भावार्थ:-
कौसल्या आदि सब माताओं के मन में ऐसा आनंद हो रहा है जैसे अभी कोई कहना ही चाहता है कि सीताजी और लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी आ गए।
*** भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार। जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥
भावार्थ:-
भरतजी की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार-बार फड़क रही है। इसे शुभ शकुन जानकर उनके मन में अत्यंत हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे-
चौपाई :
*** रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥ कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥1॥
भावार्थ:-
प्राणों की आधार रूप अवधि का एक ही दिन शेष रह गया। यह सोचते ही भरतजी के मन में अपार दुःख हुआ। क्या कारण हुआ कि नाथ नहीं आए प्रभु ने कुटिल जानकर मुझे कहीं भुला तो नहीं दिया?॥1॥
*** अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥ कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥2॥
भावार्थ:-
अहा हा! लक्ष्मण बड़े धन्य एवं बड़भागी हैं, जो श्री रामचंद्रजी के चरणारविन्द के प्रेमी हैं (अर्थात् उनसे अलग नहीं हुए)। मुझे तो प्रभु ने कपटी और कुटिल पहचान लिया, इसी से नाथ ने मुझे साथ नहीं लिया॥2॥
*** जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥ जन अवगुन प्रभु मान न काऊ।

दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥3॥
भावार्थ:-
(बात भी ठीक ही है, क्योंकि) यदि प्रभु मेरी करनी पर ध्यान दें तो सौ करोड़ (असंख्य) कल्पों तक भी मेरा निस्तार (छुटकारा) नहीं हो सकता (परंतु आशा इतनी ही है कि), प्रभु सेवक का अवगुण कभी नहीं मानते। वे दीनबंधु हैं और अत्यंत ही कोमल स्वभाव के हैं॥3॥
*** मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥ बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥4॥
भावार्थ:-
अतएव मेरे हृदय में ऐसा पक्का भरोसा है कि श्री रामजी अवश्य मिलेंगे, (क्योंकि) मुझे शकुन बड़े शुभ हो रहे हैं, किंतु अवधि बीत जाने पर यदि मेरे प्राण रह गए तो जगत् में मेरे समान नीच कौन होगा? ॥4॥
दोहा :
*** राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत। बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥1क॥
भावार्थ:-
श्री रामजी के विरह समुद्र में भरतजी का मन डूब रहा था, उसी समय पवनपुत्र हनुमान्‌जी ब्राह्मण का रूप धरकर इस प्रकार आ गए, मानो (उन्हें डूबने से बचाने के लिए) नाव आ गई हो॥1 (क)॥
*** बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात॥ राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥1ख॥
भावार्थ:-
हनुमान्‌जी ने दुर्बल शरीर भरतजी को जटाओं का मुकुट बनाए, राम! राम! रघुपति! जपते और कमल के समान नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं) का जल बहाते कुश के आसन पर बैठे देखा॥1 (ख)॥
चौपाई :
*** देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥ मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी॥1॥
भावार्थ:-
उन्हें देखते ही हनुमान्‌जी अत्यंत हर्षित हुए। उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बरसने लगा। मन में बहुत प्रकार से सुख मानकर वे कानों के लिए अमृत के समान वाणी बोले-॥1॥
*** जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥ रघुकुल तिलक्सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥2॥

भावार्थ:-

जिनके विरह में आप दिन-रात सोच करते (घुलते) रहते हैं और जिनके गुण समूहों की पंक्तियों को आप निरंतर रटते रहते हैं, वे ही रघुकुल के तिलक, सज्जनों को दुःख देने वाले और देवताओं तथा मुनियों के रक्षक श्री रामजी सकुशल आ गए॥2॥

*** रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥ सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा॥3॥

भावार्थ:-

शत्रु को रण में जीतकर सीताजी और लक्ष्मणजी सहित प्रभु आ रहे हैं, देवता उनका सुंदर यश गा रहे हैं। ये वचन सुनते ही (भरतजी को) सारे दुःख भूल गए। जैसे प्यासा आदमी अमृत पाकर प्यास के दुःख को भूल जाए॥3॥

*** को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥ मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥4॥

भावार्थ:-

(भरतजी ने पूछा-) हे तात! तुम कौन हो? और कहाँ से आए हो? (जो) तुमने मुझको (ये) परम प्रिय (अत्यंत आनंद देने वाले) वचन सुनाए। (हनुमान्‌जी ने कहा) हे कृपानिधान! सुनिए, मैं पवन का पुत्र और जाति का वानर हूँ, मेरा नाम हनुमान् है॥4॥

*** दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥ मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता। नयन स्रवतजल पुलकित गाता॥5॥

भावार्थ:-

मैं दीनों के बंधु श्री रघुनाथजी का दास हूँ। यह सुनते ही भरतजी उठकर आदरपूर्वक हनुमान्‌जी से गले लगकर मिले। मिलते समय प्रेम हृदय में नहीं समाता। नेत्रों से (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया॥5॥

*** कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजुमोहि राम पिरीते॥ बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुन भ्राता॥6॥

भावार्थ:-

(भरतजी ने कहा-) हे हनुमान्- तुम्हारे दर्शन से मेरे समस्त दुःख समाप्त हो गए (दुःखों का अंत हो गया)। (तुम्हारे रूप में) आज मुझे प्यारे रामजी ही मिल गए। भरतजी ने बार-बार कुशल पूछी (और कहा-) हे भाई! सुनो, (इस शुभ संवाद के बदले में) तुम्हें क्या दूँ?॥6॥

*** एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥ नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥7॥

भावार्थ:-

इस संदेश के समान (इसके बदले में देने लायक पदार्थ) जगत् में कुछ भी नहीं है, मैंने यह

विचार कर देख लिया है। (इसलिए) हे तात! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उऋण नहीं हो सकता। अब मुझे प्रभु का चरित्र (हाल) सुनाओ॥7॥

*** तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥ कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं॥8॥

भावार्थ:-

तब हनुमान्‌जी ने भरतजी के चरणों में मस्तक नवाकर श्री रघुनाथजी की सारी गुणगाथा कही। (भरतजी ने पूछा-) हे हनुमान्‌! कहो, कृपालु स्वामी श्री रामचंद्रजी कभी मुझे अपने दास की तरह याद भी करते हैं?॥8॥

छंद :

*** निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो। सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्‌यो॥ रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो। काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो॥

भावार्थ:-

रघुवंश के भूषण श्री रामजी क्या कभी अपने दास की भाँति मेरा स्मरण करते रहे हैं? भरतजी के अत्यंत नम्र वचन सुनकर हनुमान्‌जी पुलकित शरीर होकर उनके चरणों पर गिर पड़े (और मन में विचारने लगे कि) जो चराचर के स्वामी हैं, वे श्री रघुवीर अपने श्रीमुख से जिनके गुणसमूहों का वर्णन करते हैं, वे भरतजी ऐसे विनम्र, परम पवित्र और सद्‌गुणों के समुद्र क्यों न हों?

दोहा :

*** राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात। पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात॥2 क॥

भावार्थ:-

(हनुमान्‌जी ने कहा-) हे नाथ! आप श्री रामजी को प्राणों के समान प्रिय हैं, हे तात! मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरतजी बार-बार मिलते हैं, हृदय में हर्ष समाता नहीं है॥2 (क)॥

सोरठा :

*** भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं। कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि॥2 ख॥

भावार्थ:-

फिर भरतजी के चरणों में सिर नवाकर हनुमान्‌जी तुरंत ही श्री रामजी के पास (लौट) गए और जाकर उन्होंने सब कुशल कही। तब प्रभु हर्षित होकर विमान पर चढ़कर चले॥2 (ख)॥

चौपाई :

*** हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए॥ पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई॥1॥

भावार्थ:-

इधर भरतजी भी हर्षित होकर अयोध्यापुरी में आए और उन्होंने गुरुजी को सब समाचार सुनाया! फिर राजमहल में खबर जनाई कि श्री रघुनाथजी कुशलपूर्वक नगर को आ रहे हैं॥1॥

*** सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं॥ समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥2॥

भावार्थ:-

खबर सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं। भरतजी ने प्रभु की कुशल कहकर सबको समझाया। नगर निवासियों ने यह समाचार पाया, तो स्त्री-पुरुष सभी हर्षित होकर दौड़े॥2॥

*** दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला॥ भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी॥3॥

भावार्थ:-

(श्री रामजी के स्वागत के लिए) दही, दूब, गोरोचन, फल, फूल और मंगल के मूल नवीन तुलसीदल आदि वस्तुएँ सोने की थाली में भर-भरकर हथिनी की सी चाल वाली सौभाग्यवती स्त्रियाँ (उन्हें लेकर) गाती हुई चलीं॥3॥

*** जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं॥ एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई॥4॥

भावार्थ:-

जो जैसे हैं (जहाँ जिस दशा में हैं) वे वैसे ही (वहीं से उसी दशा में) उठ दौड़ते हैं। (देर हो जाने के डर से) बालकों और बूढ़ों को कोई साथ नहीं लाते। एक-दूसरे से पूछते हैं- भाई! तुमने दयालु श्री रघुनाथजी को देखा है?॥4॥

*** अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥ बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥5॥

भावार्थ:-

प्रभु को आते जानकर अवधपुरी संपूर्ण शोभाओं की खान हो गई। तीनों प्रकार की सुंदर वायु बहने लगी। सरयूजी अति निर्मल जल वाली हो गईं। (अर्थात् सरयूजी का जल अत्यंत निर्मल हो गया)॥5॥

दोहा :

*** हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत। चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत॥B क॥

भावार्थ:-

गुरु वशिष्ठजी, कुटुम्बी, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणों के समूह के साथ हर्षित होकर भरतजी अत्यंत प्रेमपूर्ण मन से कृपाधाम श्री रामजी के सामने अर्थात् उनकी अगवानी के लिए चले॥3

(क)॥

*** बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान। देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान॥ख॥

भावार्थ:-

बहुत सी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ीं आकाश में विमान देख रही हैं और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वर से सुंदर मंगल गीत गा रही हैं॥3 (ख)॥

*** राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान। बढ़्यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान॥3 ग॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी पूर्णिमा के चंद्रमा हैं तथा अवधपुर समुद्र है जो उस पूर्णचंद्र को देखकर हर्षित हो रहा है और शोर करता हुआ बढ़ रहा है (इधर-उधर दौड़ती हुई) स्त्रियाँ उसकी तरंगों के समान लगती हैं॥3 (ग)॥

चौपाई :

*** इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर॥ सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥1॥

भावार्थ:-

यहाँ (विमान पर से) सूर्य कुल रूपी कमल को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य श्री रामजी वानरों को मनोहर नगर दिखला रहे हैं। (वे कहते हैं-) हे सुग्रीव! हे अंगद! हे लंकापति विभीषण! सुनो। यह पुरी पवित्र है और यह देश सुंदर है॥1॥

*** जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥ अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥2॥

भावार्थ:-

यद्यपि सबने वैकुण्ठ की बड़ाई की है- यह वेद-पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत् जानता है, परंतु अवधपुरी के समान मुझे वह भी प्रिय नहीं है। यह बात (भेद) कई-कोई (बिरले ही) जानते हैं॥2॥

*** जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥ जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥3॥

भावार्थ:-

यह सुहावनी पुरी मेरी जन्मभूमि है। इसके उत्तर दिशा में जीवों को पवित्र करने वाली सरयू नदी बहती है, जिसमें स्नान करने से मनुष्य बिना ही परिश्रम मेरे समीप निवास (सामीप्य मुक्ति) पा जाते हैं॥3॥

*** अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी॥ हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी॥4॥

भावार्थ:-
यहाँ के निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं। यह पुरी सुख की राशि और मेरे परमधाम को देने वाली है। प्रभु की वाणी सुनकर सब वानर हर्षित हुए (और कहने लगे कि) जिस अवध की स्वयं श्री रामजी ने बड़ाई की, वह (अवश्य ही) धन्य है॥

श्री रामजी का स्वागत, भरत मिलाप, सबका मिलनानन्द

दोहा :
*** आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान। नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान॥4 क॥
भावार्थ:-
कृपा सागर भगवान् श्री रामचंद्रजी ने सब लोगों को आते देखा, तो प्रभु ने विमान को नगर के समीप उतरने की प्रेरणा की। तब वह पृथ्वी पर उतरा॥4 (क)॥
*** उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु। प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु॥4 ख॥
भावार्थ:-
विमान से उतरकर प्रभु ने पुष्पक विमान से कहा कि तुम अब कुबेर के पास जाओ। श्री रामचंद्रजी की प्रेरणा से वह चला, उसे (अपने स्वामी के पास जाने का) हर्ष है और प्रभु श्री रामचंद्रजी से अलग होने का अत्यंत दुःख भी॥4 (ख)॥
चौपाई :
*** आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा॥ बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥1॥
भावार्थ:-
भरतजी के साथ सब लोग आए। श्री रघुवीर के वियोग से सबके शरीर दुबले हो रहे हैं। प्रभु ने वामदेव, वशिष्ठ आदि मुनिश्रेष्ठों को देखा, तो उन्होंने धनुष-बाण पृथ्वी पर रखकर-॥1॥
*** धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥ भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया॥2॥
भावार्थ:-
छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित दौड़कर गुरुजी के चरणकमल पकड़ लिए, उनके रोम-रोम अत्यंत पुलकित हो रहे हैं। मुनिराज वशिष्ठजी ने (उठाकर) उन्हें गले लगाकर कुशल पूछी। (प्रभु ने कहा-) आप ही की दया में हमारी कुशल है॥2॥
*** सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा॥ गहे भरत पुनि प्रभु पद

पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज॥3॥
भावार्थ:-
धर्म की धुरी धारण करने वाले रघुकुल के स्वामी श्री रामजी ने सब ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें मस्तक नवाया। फिर भरतजी ने प्रभु के वे चरणकमल पकड़े जिन्हें देवता, मुनि, शंकरजी और ब्रह्माजी (भी) नमस्कार करते हैं॥3॥
*** परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥ स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥4॥
भावार्थ:-
भरतजी पृथ्वी पर पड़े हैं, उठाए उठते नहीं। तब कृपासिंधु श्री रामजी ने उन्हें जबर्दस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया। (उनके) साँवले शरीर पर रोएँ खड़े हो गए। नवीन कमल के समान नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं के) जल की बाढ़ आ गई॥4॥
छंद :
***राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी। अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥ प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही। जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही॥1॥
भावार्थ:-
कमल के समान नेत्रों से जल बह रहा है। सुंदर शरीर में पुलकावली (अत्यंत) शोभा दे रही है। त्रिलोकी के स्वामी प्रभु श्री रामजी छोटे भाई भरतजी को अत्यंत प्रेम से हृदय से लगाकर मिले। भाई से मिलते समय प्रभु जैसे शोभित हो रहे हैं, उसकी उपमा मुझसे कही नहीं जाती। मानो प्रेम और श्रृंगार शरीर धारण करके मिले और श्रेष्ठ शोभा को प्राप्त हुए॥1॥
*** बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई॥ सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥ अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो। बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥2॥
भावार्थ:-
कृपानिधान श्री रामजी भरतजी से कुशल पूछते हैं, परंतु आनंदवश भरतजी के मुख से वचन शीघ्र नहीं निकलते। (शिवजी ने कहा-) हे पार्वती! सुनो, वह सुख (जो उस समय भरतजी को मिल रहा था) वचन और मन से परे है, उसे वही जानता है जो उसे पाता है। (भरतजी ने कहा-) हे कोसलनाथ! आपने आर्त्त (दुःखी) जानकर दास को दर्शन दिए, इससे अब कुशल है। विरह समुद्र में डूबते हुए मुझको कृपानिधान ने हाथ पकड़कर बचा लिया॥2॥
दोहा :
*** पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ। लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ॥5॥
भावार्थ:-

फिर प्रभु हर्षित होकर शत्रुघ्नजी को हृदय से लगाकर उनसे मिले। तब लक्ष्मणजी और भरतजी दोनों भाई परम प्रेम से मिले॥।5॥

चौपाई :

*** भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे॥ सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥1॥

भावार्थ:-

फिर लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी से गले लगकर मिले और इस प्रकार विरह से उत्पन्न दुःसह दुःख का नाश किया। फिर भाई शत्रुघ्नजी सहित भरतजी ने सीताजी के चरणों में सिर नवाया और परम सुख प्राप्त किया॥1॥

*** प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी॥ प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु को देखकर अयोध्यावासी सब हर्षित हुए। वियोग से उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गए। सब लोगों को प्रेम विह्नल (और मिलने के लिए अत्यंत आतुर) देखकर खर के शत्रु कृपालु श्री रामजी ने एक चमत्कार किया॥2॥

*** अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥ कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥3॥

भावार्थ:-

उसी समय कृपालु श्री रामजी असंख्य रूपों में प्रकट हो गए और सबसे (एक ही साथ) यथायोग्य मिले। श्री रघुवीर ने कृपा की दृष्टि से देखकर सब नर-नारियों को शोक से रहित कर दिया॥3॥

*** छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥ एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगें चले सील गुन धामा॥4॥

भावार्थ:-

भगवान् क्षण मात्र में सबसे मिल लिए। हे उमा! यह रहस्य किसी ने नहीं जाना। इस प्रकार शील और गुणों के धाम श्री रामजी सबको सुखी करके आगे बढ़े॥4॥

*** कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥5॥

भावार्थ:-

कौसल्या आदि माताएँ ऐसे दौड़ीं मानों नई ब्यायी हुई गायें अपने बछड़ों को देखकर दौड़ी हों॥5॥

छंद :

*** जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं। दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥ अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहु बिधि कहे। गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥

भावार्थ:-

मानो नई ब्यायी हुई गायें अपने छोटे बछड़ों को घर पर छोड़ परवश होकर वन में चरने गई हों और दिन का अंत होने पर (बछड़ों से मिलने के लिए) हुँकार करके थन से दूध गिराती हुईं नगर की ओर दौड़ी हों। प्रभु ने अत्यंत प्रेम से सब माताओं से मिलकर उनसे बहुत प्रकार के कोमल वचन कहे। वियोग से उत्पन्न भयानक विपत्ति दूर हो गई और सबने (भगवान् से मिलकर और उनके वचन सुनकर) अगणित सुख और हर्ष प्राप्त किए।

दोहा :

***भेंटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि। रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि॥6 क॥

भावार्थ:-

सुमित्राजी अपने पुत्र लक्ष्मणजी की श्री रामजी के चरणों में प्रीति जानकर उनसे मिलीं। श्री रामजी से मिलते समय कैकेयीजी हृदय में बहुत सकुचाईं॥6 (क)॥

*** लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ। कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ॥6 ख॥

भावार्थ:-

लक्ष्मणजी भी सब माताओं से मिलकर और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। वे कैकेयीजी से बार-बार मिले, परंतु उनके मन का क्षोभ (रोष) नहीं जाता॥6 (ख)॥

चौपाई :

*** सासुन्ह सबनि मिली बैदेही । चरनन्हि लाग हरषु अति तेही॥ देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥1॥

भावार्थ:-

जानकीजी सब सासुओं से मिलीं और उनके चरणों में लगकर उन्हें अत्यंत हर्ष हुआ। सासुएँ कुशल पूछकर आशीष दे रही हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल हो॥1॥

*** सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥ कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं॥2॥

भावार्थ:-

सब माताएँ श्री रघुनाथजी का कमल सा मुखड़ा देख रही हैं। (नेत्रों से प्रेम के आँसू उमड़े आते हैं, परंतु) मंगल का समय जानकर वे आँसुओं के जल को नेत्रों में ही रोक रखती हैं। सोने के थाल से आरती उतारती हैं और बार-बार प्रभु के श्री अंगों की ओर देखती हैं॥2॥

*** नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं॥ कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि॥3॥

भावार्थ:-

अनेकों प्रकार से निछावरें करती हैं और हृदय में परमानंद तथा हर्ष भर रही हैं। कौसल्याजी बार-

बार कृपा के समुद्र और रणधीर श्री रघुवीर को देख रही हैं॥3॥

*** हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥ अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥4॥

भावार्थ:-

वे बार-बार हृदय में विचारती हैं कि इन्होंने लंकापति रावण को कैसे मारा? मेरे ये दोनों बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं और राक्षस तो बड़े भारी योद्धा और महान् बली थे॥4॥

दोहा :

*** लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु। परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु॥7॥

भावार्थ:-

लक्ष्मणजी और सीताजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी को माता देख रही हैं। उनका मन परमानंद में मग्न है और शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है॥7॥

चौपाई :

*** लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला॥ हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥1॥

भावार्थ:-

लंकापति विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान् और अंगद तथा हनुमान्‌जी आदि सभी उत्तम स्वभाव वाले वीर वानरों ने मनुष्यों के मनोहर शरीर धारण कर लिए॥1॥

*** भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा॥ देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती॥2॥

भावार्थ:-

वे सब भरतजी के प्रेम, सुंदर, स्वभाव (त्याग के) व्रत और नियमों की अत्यंत प्रेम से आदरपूर्वक बड़ाई कर रहे हैं और नगर वासियों की (प्रेम, शील और विनय से पूर्ण) रीति देखकर वे सब प्रभु के चरणों में उनके प्रेम की सराहना कर रहे हैं॥2॥

*** पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए॥ गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥3॥

भावार्थ:-

फिर श्री रघुनाथजी ने सब सखाओं को बुलाया और सबको सिखाया कि मुनि के चरणों में लगो। ये गुरु वशिष्ठजी हमारे कुलभर के पूज्य हैं। इन्हीं की कृपा से रण में राक्षस मारे गए हैं॥3॥

*** ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥ मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥4॥

भावार्थ:-

(फिर गुरुजी से कहा-) हे मुनि! सुनिए। ये सब मेरे सखा हैं। ये संग्राम रूपी समुद्र में मेरे लिए बेड़े (जहाज) के समान हुए। मेरे हित के लिए इन्होंने अपने जन्म तक हार दिए (अपने प्राणों तक को होम दिया) ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं॥4॥

*** सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिष निमिष उपजत सुख नए॥5॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर सब प्रेम और आनंद में मग्न हो गए। इस प्रकार पल-पल में उन्हें नए-नए सुख उत्पन्न हो रहे हैं॥5॥

दोहा :

*** कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ। आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥8 क॥

भावार्थ:-

फिर उन लोगों ने कौसल्याजी के चरणों में मस्तक नवाए। कौसल्याजी ने हर्षित होकर आशीषें दीं (और कहा-) तुम मुझे रघुनाथ के समान प्यारे हो॥8 (क)॥

***सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद। चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद॥8 ख॥

भावार्थ:-

आनन्दकन्द श्री रामजी अपने महल को चले, आकाश फूलों की वृष्टि से छा गया। नगर के स्त्री-पुरुषों के समूह अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं॥8 (ख)॥

चौपाई :

*** कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे॥ बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू॥1॥

भावार्थ:-

सोने के कलशों को विचित्र रीति से (मणि-रत्नादि से) अलंकृत कर और सजाकर सब लोगों ने अपने-अपने दरवाजों पर रख लिया। सब लोगों ने मंगल के लिए बंदनवार, ध्वजा और पताकाएँ लगाईं॥1॥

*** बीथीं सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराईं। नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे॥2॥

भावार्थ:-

सारी गलियाँ सुगंधित द्रवों से सिंचाई गईं। गजमुक्ताओं से रचकर बहुत सी चौकें पुराई गईं। अनेकों प्रकार के सुंदर मंगल साज सजाए गए और हर्षपूर्वक नगर में बहुत से डंके बजने लगे॥2॥

*** जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं॥ कंचन थार आरतीं नाना। जुबतीं सजें करहिं सुभ गाना॥3॥ `

भावार्थ:-

स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ निछावर कर रही हैं और हृदय में हर्षित होकर आशीर्वाद देती हैं। बहुत सी युवती (सौभाग्यवती) स्त्रियाँ सोने के थालों में अनेकों प्रकार की आरती सजाकर मंगलगान कर रही हैं॥3॥

*** करहिं आरती आरतिहर कें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें॥ पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना॥4॥

भावार्थ:-

वे आर्तिहर (दुःखों को हरने वाले) और सूर्यकुल रूपी कमलवन को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य श्री रामजी की आरती कर रही हैं। नगर की शोभा, संपत्ति और कल्याण का वेद, शेषजी और सरस्वतीजी वर्णन करते हैं-॥4॥

*** तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं॥5॥

भावार्थ:-

परंतु वे भी यह चरित्र देखकर ठगे से रह जाते हैं (स्तम्भित हो रहते हैं)। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! तब भला मनुष्य उनके गुणों को कैसे कह सकते हैं॥5॥

दोहा :

*** नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस। अस्त भएँ बिगसत भईं निरखि राम राकेस॥9 क॥

भावार्थ:-

स्त्रियाँ कुमुदनी हैं, अयोध्या सरोवर है और श्री रघुनाथजी का विरह सूर्य है (इस विरह सूर्य के ताप से वे मुरझा गई थीं)। अब उस विरह रूपी सूर्य के अस्त होने पर श्री राम रूपी पूर्णचन्द्र को निरखकर वे खिल उठीं॥9 (क)॥

*** होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान। पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान। 9 ख॥

भावार्थ:-

अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे हैं, आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। नगर के पुरुषों और स्त्रियों को सनाथ (दर्शन द्वारा कृतार्थ) करके भगवान् श्री रामचंद्रजी महल को चले॥9 (ख)॥

चौपाई :

*** प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥ ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा॥1॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! प्रभु ने जान लिया कि माता कैकेयी लज्जित हो गई हैं (इसलिए), वे पहले उन्हीं के महल को गए और उन्हें समझा-बुझाकर बहुत सुख दिया। फिर श्री हरि ने

अपने महल को गमन किया॥1॥

*** कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥ गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई।2॥

भावार्थ:-

कृपा के समुद्र श्री रामजी जब अपने महल को गए, तब नगर के स्त्री-पुरुष सब सुखी हुए। गुरु वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों को बुला लिया और कहा आज शुभ घड़ी, सुंदर दिन आदि सभी शुभ योग हैं॥2॥

*** सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन॥ मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए॥3॥

भावार्थ:-

आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिए, जिसमें श्री रामचंद्रजी सिंहासन पर विराजमान हों। वशिष्ठ मुनि के सुहावने वचन सुनते ही सब ब्राह्मणों को बहुत ही अच्छे लगे॥3॥

*** कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥ अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै॥4॥

भावार्थ:-

वे सब अनेकों ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि श्री रामजी का राज्याभिषेक संपूर्ण जगत को आनंद देने वाला है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब विलंब न कीजिए और महाराज का तिलक शीघ्र कीजिए॥4॥

दोहा :

*** तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ। रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ॥10 क॥

भावार्थ:-

तब मुनि ने सुमन्त्रजी से कहा, वे सुनते ही हर्षित होकर चले। उन्होंने तुरंत ही जाकर अनेकों रथ, घोड़े और हाथी सजाए,॥10 (क)॥

*** जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ। हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ॥10 ख॥

भावार्थ:-

और जहाँ-तहाँ (सूचना देने वाले) दूतों को भेजकर मांगलिक वस्तुएँ मँगाकर फिर हर्ष के साथ आकर वशिष्ठजी के चरणों में सिर नवाया॥10 (ख)॥

नवाह्नपारायण, आठवाँ विश्राम

राम राज्याभिषेक, वेदस्तुति, शिवस्तुति

चौपाई :

*** अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई॥ राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥1॥

भावार्थ:-

अवधपुरी बहुत ही सुंदर सजाई गई। देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की झड़ी लगा दी। श्री रामचंद्रजी ने सेवकों को बुलाकर कहा कि तुम लोग जाकर पहले मेरे सखाओं को स्नान कराओ॥1॥

*** सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए॥ पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे॥2॥

भावार्थ:-

भगवान् के वचन सुनते ही सेवक जहाँ-तहाँ दौड़े और तुरंत ही उन्होंने सुग्रीवादि को स्नान कराया। फिर करुणानिधान श्री रामजी ने भरतजी को बुलाया और उनकी जटाओं को अपने हाथों से सुलझाया॥2॥

*** अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई॥ भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई॥3॥

भावार्थ:-

तदनन्तर भक्त वत्सल कृपालु प्रभु श्री रघुनाथजी ने तीनों भाइयों को स्नान कराया। भरतजी का भाग्य और प्रभु की कोमलता का वर्णन अरबों शेषजी भी नहीं कर सकते॥3॥

*** पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन मागि नहाए॥ करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे॥4॥

भावार्थ:-

फिर श्री रामजी ने अपनी जटाएँ खोलीं और गुरुजी की आज्ञा माँगकर स्नान किया। स्नान करके प्रभु ने आभूषण धारण किए। उनके (सुशोभित) अंगों को देखकर सैकड़ों (असंख्य) कामदेव लजा गए॥4॥

दोहा :

*** सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ। दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ॥11 क॥

भावार्थ:-

(इधर) सासुओं ने जानकीजी को आदर के साथ तुरंत ही स्नान कराके उनके अंग-अंग में दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण भली-भाँति सजा दिए (पहना दिए)॥ 11 (क)॥

*** राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि। देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि॥11 ख॥

भावार्थ:-

श्री राम के बायीं ओर रूप और गुणों की खान रमा (श्री जानकीजी) शोभित हो रही हैं। उन्हें देखकर सब माताएँ अपना जन्म (जीवन) सफल समझकर हर्षित हुईं॥11 (ख)॥

***सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद। चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद॥11 ग॥

भावार्थ:-

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे पक्षीराज गरुड़जी! सुनिए, उस समय ब्रह्माजी, शिवजी और मुनियों के समूह तथा विमानों पर चढ़कर सब देवता आनंदकंद भगवान् के दर्शन करने के लिए आए॥11 (ग)॥

चौपाई :

*** प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा॥ रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥1॥

भावार्थ:-

प्रभु को देखकर मुनि वशिष्ठजी के मन में प्रेम भर आया। उन्होंने तुरंत ही दिव्य सिंहासन मँगवाया, जिसका तेज सूर्य के समान था। उसका सौंदर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राह्मणों को सिर नवाकर श्री रामचंद्रजी उस पर विराज गए॥1॥

*** जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥ बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥2॥

भावार्थ:-

श्री जानकीजी के सहित रघुनाथजी को देखकर मुनियों का समुदाय अत्यंत ही हर्षित हुआ। तब ब्राह्मणों ने वेदमंत्रों का उच्चारण किया। आकाश में देवता और मुनि 'जय, हो, जय हो' ऐसी पुकार करने लगे॥2॥

*** प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥ सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी॥3॥

भावार्थ:-

(सबसे) पहले मुनि वशिष्ठजी ने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणों को (तिलक करने की) आज्ञा दी। पुत्र को राजसिंहासन पर देखकर माताएँ हर्षित हुईं और उन्होंने बार-बार आरती उतारी॥3॥

*** बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥ सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं॥4॥

भावार्थ:-

उन्होंने ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिए और संपूर्ण याचकों को अयाचक बना दिया (मालामाल कर दिया)। त्रिभुवन के स्वामी श्री रामचंद्रजी को (अयोध्या के) सिंहासन पर (विराजित) देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए॥4॥

छंद :

*** नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किंनर गावहीं। नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं॥ भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते। गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असिचर्म सक्ति बिराजते॥1॥

भावार्थ:-

आकाश में बहुत से नगाड़े बज रहे हैं। गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराओं के झुंड के झुंड नाच रहे हैं। देवता और मुनि परमानंद प्राप्त कर रहे हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी, विभीषण, अंगद, हनुमान् और सुग्रीव आदि सहित क्रमशः छत्र, चँवर, पंखा, धनुष, तलवार, ढाल और शक्ति लिए हुए सुशोभित हैं॥1॥

*** श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई। नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई॥ मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे। अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥2॥

भावार्थ:-

श्री सीताजी सहित सूर्यवंश के विभूषण श्री रामजी के शरीर में अनेकों कामदेवों की छबि शोभा दे रही है। नवीन जलयुक्त मेघों के समान सुंदर श्याम शरीर पर पीताम्बर देवताओं के मन को भी मोहित कर रहा है। मुकुट, बाजूबंद आदि विचित्र आभूषण अंग-अंग में सजे हुए हैं। कमल के समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती है और लंबी भुजाएँ हैं जो उनके दर्शन करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं॥2॥

दोहा :

***वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस। बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस॥12 क॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज गरुड़जी ! वह शोभा, वह समाज और वह सुख मुझसे कहते नहीं बनता। सरस्वतीजी, शेषजी और वेद निरंतर उसका वर्णन करते हैं, और उसका रस (आनंद) महादेवजी ही जानते हैं॥12 (क)॥

***भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम। बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम॥12 ख॥

भावार्थ:-

सब देवता अलग-अलग स्तुति करके अपने-अपने लोक को चले गए। तब भाटों का रूप धारण

करके चारों वेद वहाँ आए जहाँ श्री रामजी थे॥12 (ख)॥

***प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान। लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान॥12 ग॥

भावार्थ:-

कृपानिधान सर्वज्ञ प्रभु ने (उन्हें पहचानकर) उनका बहुत ही आदर किया। इसका भेद किसी ने कुछ भी नहीं जाना। वेद गुणगान करने लगे॥12 (ग)॥

छंद :

*** जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने। दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने॥ अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे। जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे॥1॥

भावार्थ:-

सगुण और निर्गुण रूप! हे अनुपम रूप-लावण्ययुक्त! हे राजाओं के शिरोमणि! आपकी जय हो। आपने रावण आदि प्रचण्ड, प्रबल और दुष्ट निशाचरों को अपनी भुजाओं के बल से मार डाला। आपने मनुष्य अवतार लेकर संसार के भार को नष्ट करके अत्यंत कठोर दुःखों को भस्म कर दिया। हे दयालु! हे शरणागत की रक्षा करने वाले प्रभो! आपकी जय हो। मैं शक्ति (सीताजी) सहित शक्तिमान् आपको नमस्कार करता हूँ॥1॥

***तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे॥ जे नाथ करि करुना बिलोकि त्रिबिधि दुख ते निर्बहे। भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे॥2॥

भावार्थ:-

हे हरे! आपकी दुस्तर माया के वशीभूत होने के कारण देवता, राक्षस, नाग, मनुष्य और चर, अचर सभी काल कर्म और गुणों से भरे हुए (उनके वशीभूत हुए) दिन-रात अनन्त भव (आवागमन) के मार्ग में भटक रहे हैं। हे नाथ! इनमें से जिनको आपने कृपा करके (कृपादृष्टि) से देख लिया, वे (माया जनित) तीनों प्रकार के दुःखों से छूट गए। हे जन्म-मरण के श्रम को काटने में कुशल श्री रामजी! हमारी रक्षा कीजिए। हम आपको नमस्कार करते हैं॥2॥

*** जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥ बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे। जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥3॥

भावार्थ:-

जिन्होंने मिथ्या ज्ञान के अभिमान में विशेष रूप से मतवाले होकर जन्म-मृत्यु (के भय) को हरने वाली आपकी भक्ति का आदर नहीं किया, हे हरि! उन्हें देव-दुर्लभ (देवताओं को भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होने वाले, ब्रह्मा आदि के) पद को पाकर भी हम उस पद से नीचे गिरते देखते हैं

(परंतु), जो सब आशाओं को छोड़कर आप पर विश्वास करके आपके दास हो रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही जपकर बिना ही परिश्रम भवसागर से तर जाते हैं। हे नाथ! ऐसे आपका हम स्मरण करते हैं॥3॥

*** जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी। नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी॥ ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥4॥

भावार्थ:-

जो चरण शिवजी और ब्रह्माजी के द्वारा पूज्य हैं, तथा जिन चरणों की कल्याणमयी रज का स्पर्श पाकर (शिला बनी हुई) गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या तर गई, जिन चरणों के नख से मुनियों द्वारा वन्दित, त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली देवनदी गंगाजी निकलीं और ध्वजा, वज्र अंकुश और कमल, इन चिह्नों से युक्त जिन चरणों में वन में फिरते समय काँटे चुभ जाने से घट्ठे पड़ गए हैं, हे मुकुन्द! हे राम! हे रमापति! हम आपके उन्हीं दोनों चरणकमलों को नित्य भजते रहते हैं॥4॥

***अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने। षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥ फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे। पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥5॥

भावार्थ:-

वेद शास्त्रों ने कहा है कि जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है, जो (प्रवाह रूप से) अनादि है, जिसके चार त्वचाएँ, छह तने, पच्चीस शाखाएँ और अनेकों पत्ते और बहुत से फूल हैं जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकार के फल लगे हैं, जिस पर एक ही बेल है, जो उसी के आश्रित रहती है, जिसमें नित्य नए पत्ते और फूल निकलते रहते हैं, ऐसे संसार वृक्ष स्वरूप (विश्व रूप में प्रकट) आपको हम नमस्कार करते हैं॥5॥

*** जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं। ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥ करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं। मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥6॥

भावार्थ:-

ब्रह्म अजन्मा है, अद्वैत है, केवल अनुभव से ही जाना जाता है और मन से परे है- (जो इस प्रकार कहकर उस) ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें, किंतु हे नाथ! हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं। हे करुणा के धाम प्रभो! हे सद्गुणों की खान! हे देव! हम यह वर माँगते हैं कि मन, वचन और कर्म से विकारों को त्यागकर आपके चरणों में ही प्रेम करें॥6॥

दोहा :

*** सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार। अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार॥13 क॥
भावार्थ:-
वेदों ने सबके देखते यह श्रेष्ठ विनती की। फिर वे अंतर्धान हो गए और ब्रह्मलोक को चले गए॥13 (क)॥
*** बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर। बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर॥13 ख॥
भावार्थ:-
काकभुशुण्डिजी कहते हैं- हे गरुड़जी ! सुनिए, तब शिवजी वहाँ आए जहाँ श्री रघुवीर थे और गद्‌गद्‌ वाणी से स्तुति करने लगे। उनका शरीर पुलकावली से पूर्ण हो गया॥13 (ख)॥
छंद :
*** जय राम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं॥ अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो॥1॥
भावार्थ:-
हे राम! हे रमारमण (लक्ष्मीकांत)! हे जन्म-मरण के संताप का नाश करने वाले! आपकी जय हो, आवागमन के भय से व्याकुल इस सेवक की रक्षा कीजिए। हे अवधपति! हे देवताओं के स्वामी! हे रमापति! हे विभो! मैं शरणागत आपसे यही माँगता हूँ कि हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए॥1॥
*** दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महा महि भूरि रुजा॥ रजनीचर बृंद पतंग रहे। सर पावक तेज प्रचंड दहे॥2॥
भावार्थ:-
हे दस सिर और बीस भुजाओं वाले रावण का विनाश करके पृथ्वी के सब महान्‌ रोगों (कष्टों) को दूर करने वाले श्री रामजी! राक्षस समूह रूपी जो पतंगे थे, वे सब आपके बाण रूपी अग्नि के प्रचण्ड तेज से भस्म हो गए॥2॥
*** महि मंडल मंडन चारुतरं। धृत सायक चाप निषंग बरं। मद मोह महा ममता रजनी। तम पुंज दिवाकर तेज अनी॥3॥
भावार्थ:-
आप पृथ्वी मंडल के अत्यंत सुंदर आभूषण हैं, आप श्रेष्ठ बाण, धनुष और तरकस धारण किए हुए हैं। महान्‌ मद, मोह और ममता रूपी रात्रि के अंधकार समूह के नाश करने के लिए आप सूर्य के तेजोमय किरण समूह हैं॥3॥
*** मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग सरेन हिए॥ हति नाथ अनाथनि पाहि हरे। बिषया बन पावँर भूलि परे॥4॥
भावार्थ:-
कामदेव रूपी भील ने मनुष्य रूपी हिरनों के हृदय में कुभोग रूपी बाण मारकर उन्हें गिरा दिया है। हे नाथ! हे (पाप-ताप का हरण करने वाले) हरे ! उसे मारकर विषय रूपी वन में भूल पड़े हुए

इन पामर अनाथ जीवों की रक्षा कीजिए॥4॥

***बहु रोग बियोगन्हि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ए॥ भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते॥5॥

भावार्थ:-

लोग बहुत से रोगों और वियोगों (दुःखों) से मारे हुए हैं। ये सब आपके चरणों के निरादर के फल हैं। जो मनुष्य आपके चरणकमलों में प्रेम नहीं करते, वे अथाह भवसागर में पड़े हैं॥5॥

*** अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन्ह कें पद पंकज प्रीति नहीं॥ अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें॥6॥

भावार्थ:-

जिन्हें आपके चरणकमलों में प्रीति नहीं है वे नित्य ही अत्यंत दीन, मलिन (उदास) और दुःखी रहते हैं और जिन्हें आपकी लीला कथा का आधार है, उनको संत और भगवान् सदा प्रिय लगने लगते हैं॥6॥

*** नहिं राग न लोभ न मान सदा। तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा॥ एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥7॥

भावार्थ:-

उनमें न राग (आसक्ति) है, न लोभ, न मान है, न मद। उनको संपत्ति सुख और विपत्ति (दुःख) समान है। इसी से मुनि लोग योग (साधन) का भरोसा सदा के लिए त्याग देते हैं और प्रसन्नता के साथ आपके सेवक बन जाते हैं॥7॥

***करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ। पद पंकज सेवत सुद्ध हिएँ॥ सम मानि निरादर आदरही। सब संतु सुखी बिचरंति मही॥8॥

भावार्थ:-

वे प्रेमपूर्वक नियम लेकर निरंतर शुद्ध हृदय से आपके चरणकमलों की सेवा करते रहते हैं और निरादर और आदर को समान मानकर वे सब संत सुखी होकर पृथ्वी पर विचरते हैं॥8॥

*** मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे॥ तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महागद मान अरी॥9॥

भावार्थ:-

हे मुनियों के मन रूपी कमल के भ्रमर! हे महान् रणधीर एवं अजेय श्री रघुवीर! मैं आपको भजता हूँ (आपकी शरण ग्रहण करता हूँ) हे हरि! आपका नाम जपता हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ। आप जन्म-मरण रूपी रोग की महान् औषध और अभिमान के शत्रु हैं॥9॥

*** गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं॥ रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं। महिपाल बिलोकय दीन जनं॥10॥

भावार्थ:-

आप गुण, शील और कृपा के परम स्थान हैं। आप लक्ष्मीपति हैं, मैं आपको निरंतर प्रणाम करता हूँ। हे रघुनन्दन (आप जन्म-मरण, सुख-दुःख, राग-द्वेषादि) द्वंद्व समूहों का नाश कीजिए। हे पृथ्वी का पालन करने वाले राजन्। इस दीन जन की ओर भी दृष्टि डालिए॥10॥

दोहा :

***बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग। पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥14 क॥

भावार्थ:-

मैं आपसे बार-बार यही वरदान माँगता हूँ कि मुझे आपके चरणकमलों की अचल भक्ति और आपके भक्तों का सत्संग सदा प्राप्त हो। हे लक्ष्मीपते! हर्षित होकर मुझे यही दीजिए॥

*** बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास। तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास॥14 ख॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के गुणों का वर्णन करके उमापति महादेवजी हर्षित होकर कैलास को चले गए। तब प्रभु ने वानरों को सब प्रकार से सुख देने वाले डेरे दिलवाए॥14 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी॥ महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका॥1॥

भावार्थ:-

हे गरुड़जी ! सुनिए यह कथा (सबको) पवित्र करने वाली है, (दैहिक, दैविक, भौतिक) तीनों प्रकार के तापों का और जन्म-मृत्यु के भय का नाश करने वाली है। महाराज श्री रामचंद्रजी के कल्याणमय राज्याभिषेक का चरित्र (निष्कामभाव से) सुनकर मनुष्य वैराग्य और ज्ञान प्राप्त करते हैं॥1॥

*** जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं॥ सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति पुर जाहीं॥2॥

भावार्थ:-

और जो मनुष्य सकामभाव से सुनते और जो गाते हैं, वे अनेकों प्रकार के सुख और संपत्ति पाते हैं। वे जगत् में देवदुर्लभ सुखों को भोगकर अंतकाल में श्री रघुनाथजी के परमधाम को जाते हैं॥2॥

*** सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नई॥ खगपति राम कथा मैं बरनी। स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी॥3॥

भावार्थ:-

इसे जो जीवन्मुक्त, विरक्त और विषयी सुनते हैं, वे (क्रमशः) भक्ति, मुक्ति और नवीन संपत्ति (नित्य नए भोग) पाते हैं। हे पक्षीराज गरुड़जी! मैंने अपनी बुद्धि की पहुँच के अनुसार रामकथा

वर्णन की है, जो (जन्म-मरण) भय और दुःख हरने वाली है॥3॥
*** बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुंदर तरनी॥ नित नव मंगल कौसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी॥4॥
भावार्थ:-
यह वैराग्य, विवेक और भक्ति को दृढ़ करने वाली है तथा मोह रूपी नदी के (पार करने) के लिए सुंदर नाव है। अवधपुरी में नित नए मंगलोत्सव होते हैं। सभी वर्गों के लोग हर्षित रहते हैं॥4॥
***नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सब कें जिन्हहि नमत सिव मुनि अज॥ मंगल बहु प्रकार पहिराए। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए॥5॥
भावार्थ:-
श्री रामजी के चरणकमलों में- जिन्हें श्री शिवजी, मुनिगण और ब्रह्माजी भी नमस्कार करते हैं, सबकी नित्य नवीन प्रीति है। भिक्षुकों को बहुत प्रकार के वस्त्राभूषण पहनाए गए और ब्राह्मणों ने नाना प्रकार के दान पाए॥5॥

वानरों और निषाद की विदाई

दोहा :
*** ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति। जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति॥15॥
भावार्थ:-
वानर सब ब्रह्मानंद में मग्न हैं। प्रभु के चरणों में सबका प्रेम है। उन्होंने दिन जाते जाने ही नहीं और (बात की बात में) छह महीने बीत गए॥15॥
चौपाई :
*** बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं॥ तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥1॥
भावार्थ:-
उन लोगों को अपने घर भूल ही गए। (जाग्रत की तो बात ही क्या) उन्हें स्वप्न में भी घर की सुध (याद) नहीं आती, जैसे संतों के मन में दूसरों से द्रोह करने की बात कभी नहीं आती। तब श्री रघुनाथजी ने सब सखाओं को बुलाया। सबने आकर आदर सहित सिर नवाया॥1॥
*** परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥ तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥2॥
भावार्थ:-

बड़े ही प्रेम से श्री रामजी ने उनको अपने पास बैठाया और भक्तों को सुख देने वाले कोमल वचन कहे- तुम लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की है। मुँह पर किस प्रकार तुम्हारी बड़ाई करूँ?॥2॥

*** ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥ अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥3॥

भावार्थ:-

मेरे हित के लिए तुम लोगों ने घरों को तथा सब प्रकार के सुखों को त्याग दिया। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय लग रहे हो। छोटे भाई, राज्य, संपत्ति, जानकी, अपना शरीर, घर, कुटुम्ब और मित्र-॥3॥

*** सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥ सब कें प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती॥4॥

भावार्थ:-

ये सभी मुझे प्रिय हैं, परंतु तुम्हारे समान नहीं। मैं झूठ नहीं कहता, यह मेरा स्वभाव है। सेवक सभी को प्यारे लगते हैं, यह नीति (नियम) है। (पर) मेरा तो दास पर (स्वाभाविक ही) विशेष प्रेम है॥4॥

दोहा :

*** अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम। सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम॥16॥

भावार्थ:-

हे सखागण! अब सब लोग घर जाओ, वहाँ दृढ़ नियम से मुझे भजते रहना। मुझे सदा सर्वव्यापक और सबका हित करने वाला जानकर अत्यंत प्रेम करना॥16॥

चौपाई :

***सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए॥ एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे॥1॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर सब के सब प्रेममग्न हो गए। हम कौन हैं और कहाँ हैं? यह देह की सुध भी भूल गई। वे प्रभु के सामने हाथ जोड़कर टकटकी लगाए देखते ही रह गए। अत्यंत प्रेम के कारण कुछ कह नहीं सकते॥1॥

*** परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा॥ प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु ने उनका अत्यंत प्रेम देखा, (तब) उन्हें अनेकों प्रकार से विशेष ज्ञान का उपदेश दिया। प्रभु के सम्मुख वे कुछ कह नहीं सकते। बार-बार प्रभु के चरणकमलों को देखते हैं॥2॥

***तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥ सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥3॥

भावार्थ:-

तब प्रभु ने अनेक रंगों के अनुपम और सुंदर गहनेकपड़े मँगवाए। सबसे पहले भरतजी ने अपने हाथ से सँवारकर सुग्रीव को वस्त्राभूषण पहनाए॥3॥

*** प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥ अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥4॥

भावार्थ:-

फिर प्रभु की प्रेरणा से लक्ष्मणजी ने विभीषणजी को गहने-कपड़े पहनाए, जो श्री रघुनाथजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। अंगद बैठे ही रहे, वे अपनी जगह से हिले तक नहीं। उनका उत्कट प्रेम देखकर प्रभु ने उनको नहीं बुलाया॥4॥

दोहा :

*** जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ। हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ॥17 क॥

भावार्थ:-

जाम्बवान् और नील आदि सबको श्री रघुनाथजी ने स्वयं भूषण-वस्त्र पहनाए। वे सब अपने हृदयों में श्री रामचंद्रजी के रूप को धारण करके उनके चरणों में मस्तक नवाकर चले॥17 (क)॥

*** तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि। अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रसबोरि॥17 ख॥

भावार्थ:-

तब अंगद उठकर सिर नवाकर, नेत्रों में जल भरकर और हाथ जोड़कर अत्यंत विनम्र तथा मानो प्रेम के रस में डुबोए हुए (मधुर) वचन बोले-॥17 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥ मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली॥1॥

भावार्थ:-

हे सर्वज्ञ! हे कृपा और सुख के समुद्र! हे दीनों पर दया करने वाले! हे आर्तों के बंधु! सुनिए! हे नाथ! मरते समय मेरा पिता बालि मुझे आपकी ही गोद में डाल गया था॥1॥

***असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥ मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥2॥

भावार्थ:-

अतः हे भक्तों के हितकारी! अपना अशरण-शरण विरद (बाना) याद करके मुझे त्यागिए नहीं। मेरे तो स्वामी, गुरु, पिता और माता सब कुछ आप ही हैं। आपके चरणकमलों को छोड़कर मैं

कहाँ जाऊँ?॥2॥

*** तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥ बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥3॥

भावार्थ:-

हे महाराज! आप ही विचारकर कहिए, प्रभु (आप) को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है? हे नाथ! इस ज्ञान, बुद्धि और बल से हीन बालक तथा दीन सेवक को शरण में रखिए॥3॥

***नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥ अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥4॥

भावार्थ:-

मैं घर की सब नीची से नीची सेवा करूँगा और आपके चरणकमलों को देख-देखकर भवसागर से तर जाऊँगा। ऐसा कहकर वे श्री रामजी के चरणों में गिर पड़े (और बोले-) हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए। हे नाथ! अब यह न कहिए कि तू घर जा॥4॥

दोहा :

*** अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव। प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥18 क॥

भावार्थ:-

अंगद के विनम्र वचन सुनकर करुणा की सीमा प्रभु श्री रघुनाथजी ने उनको उठाकर हृदय से लगा लिया। प्रभु के नेत्र कमलों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥ 18 (क)॥

*** निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ। बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥18 ख॥

भावार्थ:-

तब भगवान् ने अपने हृदय की माला, वस्त्र और मणि (रत्नों के आभूषण) बालि पुत्र अंगद को पहनाकर और बहुत प्रकार से समझाकर उनकी विदाई की॥18 (ख)॥

चौपाई :

*** भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥ अंगद हृदयँ प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा॥1॥

भावार्थ:-

भक्त की करनी को याद करके भरतजी छोटे भाई शत्रुघ्नजी और लक्ष्मणजी सहित उनको पहुँचाने चले। अंगद के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है)। वे फिर-फिरकर श्री रामजी की ओर देखते हैं॥1॥

*** बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा॥ राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥2॥

भावार्थ:-

और बार-बार दण्डवत प्रणाम करते हैं। मन में ऐसा आता है कि श्री रामजी मुझे रहने को कह दें। वे श्री रामजी के देखने की, बोलने की, चलने की तथा हँसकर मिलने की रीति को याद कर-करके सोचते हैं (दुःखी होते हैं)॥2॥

***प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी। चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी॥ अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए॥3॥

भावार्थ:-

किंतु प्रभु का रुख देखकर, बहुत से विनय वचन कहकर तथा हृदय में चरणकमलों को रखकर वे चले। अत्यंत आदर के साथ सब वानरों को पहुँचाकर भाइयों सहित भरतजी लौट आए॥3॥

*** तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना॥ दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा॥4॥

भावार्थ:-

तब हनुमान्‌जी ने सुग्रीव के चरण पकड़कर अनेक प्रकार से विनती की और कहा- हे देव! दस (कुछ) दिन श्री रघुनाथजी की चरणसेवा करके फिर मैं आकर आपके चरणों के दर्शन करूँगा॥4॥

*** पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा॥ अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता॥5॥

भावार्थ:-

(सुग्रीव ने कहा-) हे पवनकुमार! तुम पुण्य की राशि हो (जो भगवान् ने तुमको अपनी सेवा में रख लिया)। जाकर कृपाधाम श्री रामजी की सेवा करो। सब वानर ऐसा कहकर तुरंत चल पड़े। अंगद ने कहा- हे हनुमान्‌ ! सुनो-॥5॥

दोहा :

*** कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि। बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि॥19 क॥

भावार्थ:-

मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, प्रभु से मेरी दण्डवत्‌ कहना और श्री रघुनाथजी को बार-बार मेरी याद कराते रहना॥19 (क)॥

*** अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत। तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत॥19 ख॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर बालिपुत्र अंगद चले, तब हनुमान्‌जी लौट आए और आकर प्रभु से उनका प्रेम वर्णन किया। उसे सुनकर भगवान्‌ प्रेममग्न हो गए॥19 (ख)॥ कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥19 ग॥

भावार्थ:-

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! श्री रामजी का चित्त वज्र से भी अत्यंत कठोर और फूल से भी अत्यंत कोमल है। तब कहिए, वह किसकी समझ में आ सकता है?॥19 (ग)॥

चौपाई :

*** पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा॥ जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥1॥

भावार्थ:-

फिर कृपालु श्री रामजी ने निषादराज को बुला लिया और उसे भूषण, वस्त्र प्रसाद में दिए (फिर कहा-) अब तुम भी घर जाओ, वहाँ मेरा स्मरण करते रहना और मन, वचन तथा कर्म से धर्म के अनुसार चलना॥1॥

*** तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥ बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी॥2॥

भावार्थ:-

तुम मेरे मित्र हो और भरत के समान भाई हो। अयोध्या में सदा आते-जाते रहना। यह वचन सुनते ही उसको भारी सुख उत्पन्न हुआ। नेत्रों में (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल भरकर वह चरणों में गिर पड़ा॥2॥

***चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा॥ रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी॥3॥

भावार्थ:-

फिर भगवान् के चरणकमलों को हृदय में रखकर वह घर आया और आकर अपने कुटुम्बियों को उसने प्रभु का स्वभाव सुनाया। श्री रघुनाथजी का यह चरित्र देखकर अवधपुरवासी बारंबार कहते हैं कि सुख की राशि श्री रामचंद्रजी धन्य हैं॥3॥

*** राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥ बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥4॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर तीनों लोक हर्षित हो गए, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसी से वैर नहीं करता। श्री रामचंद्रजी के प्रताप से सबकी विषमता (आंतरिक भेदभाव) मिट गई॥4॥

दोहा :

*** बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥20॥

भावार्थ:-

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है॥20॥

रामराज्य का वर्णन

चौपाई :

*** दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥ सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥1॥

भावार्थ:-

'रामराज्य' में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं॥1॥

*** चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥ राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥2॥

भावार्थ:-

धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत् में परिपूर्ण हो रहा है, स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्ति के परायण हैं और सभी परम गति (मोक्ष) के अधिकारी हैं॥2॥

*** अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥ नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥3॥

भावार्थ:-

छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती, न किसी को कोई पीड़ा होती है। सभी के शरीर सुंदर और निरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन ही है॥3॥

***सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥ सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥4॥

भावार्थ:-

सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरे के किए हुए उपकार को मानने वाले) हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं है॥4॥

दोहा :

*** राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं। काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहु हि नाहिं॥21॥

भावार्थ:-

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे पक्षीराज गुरुड़जी! सुनिए। श्री राम के राज्य में जड़, चेतन सारे जगत् में काल, कर्म स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए दुःख किसी को भी नहीं होते (अर्थात् इनके बंधन में कोई नहीं है)॥21॥

चौपाई :

*** भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥ भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहु त न तासू॥1॥

भावार्थ:-

अयोध्या में श्री रघुनाथजी सात समुद्रों की मेखला (करधनी) वाली पृथ्वी के एक मात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोम में अनेकों ब्रह्मांड हैं, उनके लिए सात द्वीपों की यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है॥1॥

***सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥ सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी॥ फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी॥2॥

भावार्थ:-

बल्कि प्रभु की उस महिमा को समझ लेने पर तो यह कहने में (कि वे सात समुद्रों से घिरी हुई सप्त द्वीपमयी पृथ्वी के एकच्छत्र सम्राट हैं) उनकी बड़ी हीनता होती है, परंतु हे गरुड़जी! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है, वे भी फिर इस लीला में बड़ा प्रेम मानते हैं॥2॥

*** सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला॥ राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥3॥

भावार्थ:-

क्योंकि उस महिमा को भी जानने का फल यह लीला (इस लीला का अनुभव) ही है, इन्द्रियों का दमन करने वाले श्रेष्ठ महामुनि ऐसा कहते हैं। रामराज्य की सुख सम्पत्ति का वर्णन शेषजी और सरस्वतीजी भी नहीं कर सकते॥3॥

*** सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥ एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥4॥

भावार्थ:-

सभी नर-नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुष मात्र एक पत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करने वाली हैं॥4॥

दोहा :

*** दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज। जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें

राज॥22॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के राज्य में दण्ड केवल संन्यासियों के हाथों में है और भेद नाचने वालों के नृत्य समाज में है और 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए ही सुनाई पड़ता है (अर्थात् राजनीति में शत्रुओं को जीतने तथा चोर-डाकुओं आदि को दमन करने के लिए साम, दान, दण्ड और भेद- ये चार उपाय किए जाते हैं। रामराज्य में कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिए 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिए दण्ड किसी को नहीं होता, दण्ड शब्द केवल संन्यासियों के हाथ में रहने वाले दण्ड के लिए ही रह गया है तथा सभी अनुकूल होने के कारण भेदनीति की आवश्यकता ही नहीं रह गई। भेद, शब्द केवल सुर-ताल के भेद के लिए ही कामों में आता है।)॥22॥

चौपाई :

*** फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥ खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥1॥

भावार्थ:-

वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह (वैर भूलकर) एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभी ने स्वाभाविक वैर भुलाकर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है॥1॥

*** कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥ सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥2॥

भावार्थ:-

पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं, भाँति-भाँति के पशुओं के समूह वन में निर्भय विचरते और आनंद करते हैं। शीतल, मन्द, सुगंधित पवन चलता रहता है। भौंरे पुष्पों का रस लेकर चलते हुए गुंजार करते जाते हैं॥2॥

*** लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥ ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी॥3॥

भावार्थ:-

बेलें और वृक्ष माँगने से ही मधु (मकरन्द) टपका देते हैं। गायें मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सत्ययुग की करनी (स्थिति) हो गई॥3॥

*** प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥ सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥4॥

भावार्थ:-

समस्त जगत् के आत्मा भगवान् को जगत् का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खानें प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहाने

लगीं॥।4॥

*** सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥ सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥5॥

भावार्थ:-

समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यंत प्रसन्न हैं॥5॥

दोहा :

***बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज। मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥23॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के राज्य में चंद्रमा अपनी (अमृतमयी) किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं, जितने की आवश्यकता होती है और मेघ माँगने से (जब जहाँ जितना चाहिए उतना ही) जल देते हैं॥23॥

चौपाई :

*** कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥ श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर॥1॥

भावार्थ:-

प्रभु श्री रामजी ने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किए और ब्राह्मणों को अनेकों दान दिए। श्री रामचंद्रजी वेदमार्ग के पालने वाले, धर्म की धुरी को धारण करने वाले, (प्रकृतिजन्य सत्व, रज और तम) तीनों गुणों से अतीत और भोगों (ऐश्वर्य) में इन्द्र के समान हैं॥1॥

*** पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता॥ जानति कृपासिंधु प्रभुताई॥ सेवति चरन कमल मन लाई॥2॥

भावार्थ:-

शोभा की खान, सुशील और विनम्र सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती हैं। वे कृपासागर श्री रामजी की प्रभुता (महिमा) को जानती हैं और मन लगाकर उनके चरणकमलों की सेवा करती हैं॥2॥

*** जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी॥ निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥3॥

भावार्थ:-

यद्यपि घर में बहुत से (अपार) दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवा की विधि में कुशल हैं, तथापि (स्वामी की सेवा का महत्व जानने वाली) श्री सीताजी घर की सब सेवा अपने ही हाथों से करती हैं और श्री रामचंद्रजी की आज्ञा का अनुसरण करती हैं॥3॥

*** जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ॥ कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥4॥

भावार्थ:-

कृपासागर श्री रामचंद्रजी जिस प्रकार से सुख मानते हैं, श्री जी वही करती हैं, क्योंकि वे सेवा की विधि को जानने वाली हैं। घर में कौसल्या आदि सभी सासुओं की सीताजी सेवा करती हैं, उन्हें किसी बात का अभिमान और मद नहीं है॥4॥

*** उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता॥5॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा जगज्जननी रमा (सीताजी) ब्रह्मा आदि देवताओं से वंदित और सदा अनिंदित (सर्वगुण संपन्न) हैं॥5॥

दोहा :

*** जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥24॥

भावार्थ:-

देवता जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, परंतु वे उनकी ओर देखती भी नहीं, वे ही लक्ष्मीजी (जानकीजी) अपने (महामहिम) स्वभाव को छोड़कर श्री रामचंद्रजी के चरणारविन्द में प्रीति करती हैं॥24॥

चौपाई :

*** सेवहिं सानकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई॥ प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं॥1॥

भावार्थ:-

सब भाई अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं। श्री रामजी के चरणों में उनकी अत्यंत अधिक प्रीति है। वे सदा प्रभु का मुखारविन्द ही देखते रहते हैं कि कृपालु श्री रामजी कभी हमें कुछ सेवा करने को कहें॥1॥

*** राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥ हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥2॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी भी भाइयों पर प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकार की नीतियाँ सिखलाते हैं। नगर के लोग हर्षित रहते हैं और सब प्रकार के देवदुर्लभ (देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने योग्य) भोग भोगते हैं॥2॥

*** अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्री रघुबीर चरन रति चहहीं॥ दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए॥3॥

भावार्थ:-

वे दिन-रात ब्रह्माजी को मनाते रहते हैं और (उनसे) श्री रघुवीर के चरणों में प्रीति चाहते हैं। सीताजी के लव और कुश ये दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनका वेद-पुराणों ने वर्णन किया है॥3॥

*** दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर॥ दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे॥4॥

भावार्थ:-

वे दोनों ही विजयी (विख्यात योद्धा), नम्र और गुणों के धाम हैं और अत्यंत सुंदर हैं, मानो श्री हरि के प्रतिबिम्ब ही हों। दो-दो पुत्र सभी भाइयों के हुए जो बड़े ही सुंदर, गुणवान् और सुशील थे॥4॥

पुत्रोत्पति, अयोध्याजी की रमणीयता, सनकादिका आगमन और संवाद

दोहा :

*** ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार। सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार॥25॥

भावार्थ:-

जो (बौद्धिक) ज्ञान, वाणी और इंद्रियों से परे और अजन्मा है तथा माया, मन और गुणों के परे है, वही सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रेष्ठ नरलीला करते हैं॥25॥

चौपाई :

*** प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन॥ बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥1॥

भावार्थ:-

प्रातःकाल सरयूजी में स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभा में बैठते हैं। वशिष्ठजी वेद और पुराणों की कथाएँ वर्णन करते हैं और श्री रामजी सुनते हैं, यद्यपि वे सब जानते हैं॥1॥

*** अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं॥ भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई॥2॥

भावार्थ:-

वे भाइयों को साथ लेकर भोजन करते हैं। उन्हें देखकर सभी माताएँ आनंद से भर जाती हैं। भरतजी और शत्रुघ्नजी दोनों भाई हनुमान्‌जी सहित उपवनों में जाकर,॥2॥

*** बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥ सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥3॥

भावार्थ:-

वहाँ बैठकर श्री रामजी के गुणों की कथाएँ पूछते हैं और हनुमान्‌जी अपनी सुंदर बुद्धि से उन

गुणों में गोता लगाकर उनका वर्णन करते हैं। श्री रामचंद्रजी के निर्मल गुणों को सुनकर दोनों भाई अत्यंत सुख पाते हैं और विनय करके बार-बार कहलवाते हैं॥3॥

*** सब कें गृह गृह होहिं पुराना। राम चरित पावन बिधि नाना॥ नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥4॥

भावार्थ:-

सबके यहाँ घर-घर में पुराणों और अनेक प्रकार के पवित्र रामचरित्रों की कथा होती है। पुरुष और स्त्री सभी श्री रामचंद्रजी का गुणगान करते हैं और इस आनंद में दिन-रात का बीतना भी नहीं जान पाते॥4॥

दोहा :

*** अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज। सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥26॥

भावार्थ:-

जहाँ भगवान् श्री रामचंद्रजी स्वयं राजा होकर विराजमान हैं, उस अवधपुरी के निवासियों के सुख-संपत्ति के समुदाय का वर्णन हजारों शेषजी भी नहीं कर सकते॥26॥

चौपाई :

***नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥ दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥1॥

भावार्थ:-

नारद आदि और सनक आदि मुनीश्वर सब कोसलराज श्री रामजी के दर्शन के लिए प्रतिदिन अयोध्या आते हैं और उस (दिव्य) नगर को देखकर वैराग्य भुला देते हैं॥1॥

*** जातरूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं॥ पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर॥2॥

भावार्थ:-

(दिव्य) स्वर्ण और रत्नों से बनी हुई अटारियाँ हैं। उनमें (मणि-रत्नों की) अनेक रंगों की सुंदर ढली हुई फर्शें हैं। नगर के चारों ओर अत्यंत सुंदर परकोटा बना है जिस पर सुंदर रंग-बिरंगे कँगूरे बने हैं॥2॥

*** नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥ लमहि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा॥3॥

भावार्थ:-

मानो नवग्रहों ने बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावती को आकर घेर लिया हो। पृथ्वी (सड़कों) पर अनेकों रंगों के (दिव्य) काँचों (रत्नों) की गच बनाई (ढाली) गई है, जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनियों के भी मन नाच उठते हैं॥3॥

*** धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥ बहु मनि रचितझरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥4॥

भावार्थ:-

उज्ज्वल महल ऊपर आकाश को चूम (छू) रहे हैं। महलों पर के कलश (अपने दिव्य प्रकाश से) मानो सूर्य, चंद्रमा के प्रकाश की भी निंदा (तिरस्कार) करते हैं। (महलों में) बहुत सी मणियों से रचे हुए झरोखे सुशोभित हैं और घर-घर में मणियों के दीपक शोभा पा रहे हैं॥4॥

छंद :

*** मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची। मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥ सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे। प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे॥

भावार्थ:-

घरों में मणियों के दीपक शोभा दे रहे हैं। मूँगों की बनी हुई देहलियाँ चमक रही हैं। मणियों (रत्नों) के खम्भे हैं। मरकतमणियों (पन्नों) से जड़ी हुई सोने की दीवारें ऐसी सुंदर हैं मानो ब्रह्मा ने खास तौर से बनाई हों। महल सुंदर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुंदर स्फटिक के आँगन बने हैं। प्रत्येक द्वार पर बहुत से खरादे हुए हीरों से जड़े हुए सोने के किंवाड़ हैं॥

दोहा :

*** चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ। राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ॥27॥

भावार्थ:-

घर-घर में सुंदर चित्रशालाएँ हैं, जिनमें श्री रामचंद्रजी के चरित्र बड़ी सुंदरता के साथ सँवारकर अंकित किए हुए हैं। जिन्हें मुनि देखते हैं तो वे उनके भी चित्त को चुरा लेते हैं॥27॥

चौपाई :

*** सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं॥ लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं॥1॥

भावार्थ:-

सभी लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की पुष्पों की वाटिकाएँ यत्न करके लगा रखी हैं, जिनमें बहुत जातियों की सुंदर और ललित लताएँ सदा वसंत की तरह फूलती रहती हैं॥1॥

***गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर। नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए॥2॥

भावार्थ:-

भौंरे मनोहर स्वर से गुंजार करते हैं। सदा तीनों प्रकार की सुंदर वायु बहती रहती है। बालकों ने बहुत से पक्षी पाल रखे हैं जो मधुर बोली बोलते हैं और उड़ने में सुंदर लगते हैं॥2॥

*** मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत॥ जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥3॥

भावार्थ:-

मोर, हंस, सारस और कबूतर घरों के ऊपर बड़ी ही शोभा पाते हैं। वे पक्षी (मणियों की दीवारों में और छत में) जहाँ-तहाँ अपनी परछाईं देखकर (वहाँ दूसरे पक्षी समझकर) बहुत प्रकार से मधुर बोली बोलते और नृत्य करते हैं॥3॥

***सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक॥ राज दुआर सकल बिधि चारू। बीथीं चौहट रुचिर बजारू॥4॥

भावार्थ:-

बालक तोता-मैना को पढ़ाते हैं कि कहो- 'राम' 'रघुपति' 'जनपालक'। राजद्वार सब प्रकार से सुंदर है। गलियाँ, चौराहे और बाजार सभी सुंदर हैं॥4॥

छंद :

*** बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए। जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए॥ बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते। सब सुखी सब सच्चरि सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे॥

भावार्थ:-

सुंदर बाजार है, जो वर्णन करते नहीं बनता, वहाँ वस्तुएँ बिना ही मूल्य मिलती हैं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहाँ की संपत्ति का वर्णन कैसे किया जाए? बजाज (कपड़े का व्यापार करने वाले), सराफ (रुपए-पैसे का लेन-देन करने वाले) आदि वणिक् (व्यापारी) बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो अनेक कुबेर हों, स्त्री, पुरुष बच्चे और बूढ़े जो भी हैं, सभी सुखी, सदाचारी और सुंदर हैं॥

दोहा :

*** उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर। बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर॥28॥

भावार्थ:-

नगर के उत्तर दिशा में सरयूजी बह रही हैं, जिनका जल निर्मल और गहरा है। मनोहर घाट बँधे हुए हैं, किनारे पर जरा भी कीचड़ नहीं है॥28॥

चौपाई :

*** दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा॥ पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥1॥

भावार्थ:-

अलग कुछ दूरी पर वह सुंदर घाट है, जहाँ घोड़ों और हाथियों के ठट्ट के ठट्ट जल पिया करते हैं। पानी भरने के लिए बहुत से (जनाने) घाट हैं, जो बड़े ही मनोहर हैं। वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते॥1॥

*** राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर॥ तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर॥2॥

भावार्थ:-

राजघाट सब प्रकार से सुंदर और श्रेष्ठ है, जहाँ चारों वर्णों के पुरुष स्नान करते हैं। सरयूजी के किनारे-किनारे देवताओं के मंदिर हैं, जिनके चारों ओर सुंदर उपवन (बगीचे) हैं॥2॥

*** कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी॥ तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई॥3॥

भावार्थ:-

नदी के किनारे कहीं-कहीं विरक्त और ज्ञानपरायण मुनि और संन्यासी निवास करते हैं। सरयूजी के किनारे-किनारे सुंदर तुलसीजी के झुंड के झुंड बहुत से पेड़ मुनियों ने लगा रखे हैं॥3॥

*** पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई॥ देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा॥4॥

भावार्थ:-

नगर की शोभा तो कुछ कही नहीं जाती। नगर के बाहर भी परम सुंदरता है। श्री अयोध्यापुरी के दर्शन करते ही संपूर्ण पाप भाग जाते हैं। (वहाँ) वन, उपवन, बावलिया और तालाब सुशोभित हैं॥4॥

छंद :

*** बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं। सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥ बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं। आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं॥

भावार्थ:-

अनुपम बावलियाँ, तालाब और मनोहर तथा विशाल कुएँ शोभा दे रहे हैं, जिनकी सुंदर (रत्नों की) सीढ़ियाँ और निर्मल जल देखकर देवता और मुनि तक मोहित हो जाते हैं। (तालाबों में) अनेक रंगों के कमल खिल रहे हैं, अनेकों पक्षी कूज रहे हैं और भौंरे गुंजार कर रहे हैं। (परम) रमणीय बगीचे कोयल आदि पक्षियों की (सुंदर बोली से) मानो राह चलने वालों को बुला रहे हैं।

दोहा :

*** रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ। अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥29॥

भावार्थ:-

स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् जहाँ राजा हों, उस नगर का कहीं वर्णन किया जा सकता है? अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और समस्त सुख-संपत्तियाँ अयोध्या में छा रही हैं॥29॥

चौपाई :

*** जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं॥ भजहु प्रनत प्रतिपालक

रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि॥1॥
भावार्थ:-
लोग जहाँ-तहाँ श्री रघुनाथजी के गुण गाते हैं और बैठकर एक-दूसरे को यही सीख देते हैं कि शरणागत का पालन करने वाले श्री रामजी को भजो, शोभा, शील, रूप और गुणों के धाम श्री रघुनाथजी को भजो॥1॥
*** जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि॥ धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रनधीरहि॥2॥
भावार्थ:-
कमलनयन और साँवले शरीर वाले को भजो। पलक जिस प्रकार नेत्रों की रक्षा करती हैं उसी प्रकार अपने सेवकों की रक्षा करने वाले को भजो। सुंदर बाण, धनुष और तरकस धारण करने वाले को भजो। संत रूपी कमलवन के (खिलाने के) सूर्य रूप रणधीर श्री रामजी को भजो॥2॥
*** काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि॥ लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन सुखदातहि॥3॥
भावार्थ:-
कालरूपी भयानक सर्प के भक्षण करने वाले श्री राम रूप गरुड़जी को भजो। निष्कामभाव से प्रणाम करते ही ममता का नाश कर देने वाले श्री रामजी को भजो। लोभ-मोह रूपी हरिनों के समूह के नाश करने वाले श्री राम किरात को भजो। कामदेव रूपी हाथी के लिए सिंह रूप तथा सेवकों को सुख देने वाले श्री राम को भजो॥3॥
*** संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि॥ जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि॥4॥
भावार्थ:-
संशय और शोक रूपी घने अंधकार का नाश करने वाले श्री राम रूप सूर्य को भजो। राक्षस रूपी घने वन को जलाने वाले श्री राम रूप अग्नि को भजो। जन्म-मृत्यु के भय को नाश करने वाले श्री जानकी समेत श्री रघुवीर को क्यों नहीं भजते?॥4॥
***बहु बासना मसक हिम रासिहि। सदा एकरस अज अबिनासिहि॥ मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि॥5॥
भावार्थ:-
बहुत सी वासनाओं रूपी मच्छरों को नाश करने वाले श्री राम रूप हिमराशि (बर्फ के ढेर) को भजो। नित्य एकरस, अजन्मा और अविनाशी श्री रघुनाथजी को भजो। मुनियों को आनंद देने वाले, पृथ्वी का भार उतारने वाले और तुलसीदास के उदार (दयालु) स्वामी श्री रामजी को भजो॥5॥
दोहा :

*** एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान। सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान॥30॥

भावार्थ:-

इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुष श्री रामजी का गुण-गान करते हैं और कृपानिधान श्री रामजी सदा सब पर अत्यंत प्रसन्न रहते हैं॥30॥

चौपाई :

*** जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥ पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहु तेन्ह सुख बहु तन मन सोका॥1॥

भावार्थ:-

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे पक्षीराज गरुड़जी! जब से रामप्रताप रूपी अत्यंत प्रचण्ड सूर्य उदित हुआ, तब से तीनों लोकों में पूर्ण प्रकाश भर गया है। इससे बहुतों को सुख और बहुतों के मन में शोक हुआ॥1॥

*** जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी॥ अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥2॥ `

भावार्थ:-

जिन-जिन को शोक हुआ, उन्हें मैं बखानकर कहता हूँ (सर्वत्र प्रकाश छा जाने से) पहले तो अविद्या रूपी रात्रि नष्ट हो गई। पाप रूपी उल्लू जहाँ-तहाँ छिप गए और काम-क्रोध रूपी कुमुद मुँद गए॥2॥

*** बिबिध कर्म गुन काल सुभाउ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥ मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥3॥

भावार्थ:-

भाँति-भाँति के (बंधनकारक) कर्म, गुण, काल और स्वभाव- ये चकोर हैं, जो (रामप्रताप रूपी सूर्य के प्रकाश में) कभी सुख नहीं पाते। मत्सर (डाह), मान, मोह और मद रूपी जो चोर हैं, उनका हुनर (कला) भी किसी ओर नहीं चल पाता॥3॥

*** धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना॥ सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका॥4॥

भावार्थ:-

धर्म रूपी तालाब में ज्ञान, विज्ञान- ये अनेकों प्रकार के कमल खिल उठे। सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक- ये अनेकों चकवे शोकरहित हो गए॥4॥

दोहा :

*** यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास। पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास॥31॥

भावार्थ:-

यह श्री रामप्रताप रूपी सूर्य जिसके हृदय में जब प्रकाश करता है, तब जिनका वर्णन पीछे से किया गया है, वे (धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक) बढ़ जाते हैं और जिनका वर्णन पहले किया गया है, वे (अविद्या, पाप, काम, क्रोध, कर्म, काल, गुण, स्वभाव आदि) नाश को प्राप्त होते (नष्ट हो जाते) हैं॥31॥

चौपाई :

*** भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा॥ सुंदर उपबन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए॥1॥

भावार्थ:-

एक बार भाइयों सहित श्री रामचंद्रजी परम प्रिय हनुमान्‌जी को साथ लेकर सुंदर उपवन देखने गए। वहाँ के सब वृक्ष फूले हुए और नए पत्तों से युक्त थे॥1॥

*** जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए॥ ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना॥2॥

भावार्थ:-

सुअवसर जानकर सनकादि मुनि आए, जो तेज के पुंज, सुंदर गुण और शील से युक्त तथा सदा ब्रह्मानंद में लवलीन रहते हैं। देखने में तो वे बालक लगते हैं, परंतु हैं बहुत समय के॥2॥

***रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा॥ आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥3॥

भावार्थ:-

मानो चारों वेद ही बालक रूप धारण किए हों। वे मुनि समदर्शी और भेदरहित हैं। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। उनके एक ही व्यसन है कि जहाँ श्री रघुनाथजी की चरित्र कथा होती है वहाँ जाकर वे उसे अवश्य सुनते हैं॥3॥

*** तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी॥ राम कथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी॥4॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! सनकादि मुनि वहाँ गए थे (वहीं से चले आ रहे थे) जहाँ ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ श्री अगस्त्यजी रहते थे। श्रेष्ठ मुनि ने श्री रामजी की बहुत सी कथाएँ वर्णन की थीं, जो ज्ञान उत्पन्न करने में उसी प्रकार समर्थ हैं, जैसे अरणि लकड़ी से अग्नि उत्पन्न होती है॥4॥

दोहा :

*** देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह। स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह॥32॥

भावार्थ:-

सनकादि मुनियों को आते देखकर श्री रामचंद्रजी ने हर्षित होकर दंडवत् किया और स्वागत (कुशल) पूछकर प्रभु ने (उनके) बैठने के लिए अपना पीताम्बर बिछा दिया॥32॥

चौपाई :

*** कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई॥ मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी॥1॥

भावार्थ:-

फिर हनुमान्‌जी सहित तीनों भाइयों ने दंडवत् की, सबको बड़ा सुख हुआ। मुनि श्री रघुनाथजी की अतुलनीय छबि देखकर उसी में मग्न हो गए। वे मन को रोक न सके॥1॥

*** स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन॥ एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं॥2॥

भावार्थ:-

वे जन्म-मृत्यु (के चक्र) से छुड़ाने वाले, श्याम शरीर, कमलनयन, सुंदरता के धाम श्री रामजी को टकटकी लगाए देखते ही रह गए, पलक नहीं मारते और प्रभु हाथ जोड़े सिर नवा रहे हैं॥2॥

*** तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा॥ कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे॥3॥

भावार्थ:-

उनकी (प्रेम विह्वल) दशा देखकर (उन्हीं की भाँति) श्री रघुनाथजी के नेत्रों से भी (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया। दतनन्तर प्रभु ने हाथ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियों को बैठाया और परम मनोहर वचन कहे-॥3॥

*** आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा॥ बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा॥4॥

भावार्थ:-

हे मुनीश्वरो! सुनिए, आज मैं धन्य हूँ। आपके दर्शनों ही से (सारे) पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े ही भाग्य से सत्संग की प्राप्ति होती है, जिससे बिन ही परिश्रम जन्म-मृत्यु का चक्र नष्ट हो जाता है॥4॥

दोहा :

*** संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ। कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ॥33॥

भावार्थ:-

संत का संग मोक्ष (भव बंधन से छूटने) का और कामी का संग जन्म-मृत्यु के बंधन में पड़ने का मार्ग है। संत, कवि और पंडित तथा वेद, पुराण (आदि) सभी सद्‌ग्रंथ ऐसा कहते हैं॥33॥

चौपाई :

*** सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी॥ जय भगवंतअनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय॥1॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर चारों मुनि हर्षित होकर पुलकित शरीर से स्तुति करने लगे- हे भगवन्! आपकी जय हो। आप अंतरहित, विकाररहित, पापरहित, अनेक (सब रूपों में प्रकट), एक (अद्वितीय) और करुणामय हैं॥1॥

*** जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर॥ जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर॥2॥

भावार्थ:-

हे निर्गुण! आपकी जय हो। हे गुण के समुद्र! आपकी जय हो, जय हो। आप सुख के धाम, (अत्यंत) सुंदर और अति चतुर हैं। हे लक्ष्मीपति! आपकी जय हो। हे पृथ्वी के धारण करने वाले! आपकी जय हो। आप उपमारहित, अजन्मे, अनादि और शोभा की खान हैं॥2॥

*** ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद॥ तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन॥3॥

भावार्थ:-

आप ज्ञान के भंडार, (स्वयं) मानरहित और (दूसरों को) मान देने वाले हैं। वेद और पुराण आपका पावन सुंदर यश गाते हैं। आप तत्त्व के जानने वाले, की हुई सेवा को मानने वाले और अज्ञान का नाश करने वाले हैं। हे निरंजन (मायारहित)! आपके अनेकों (अनंत) नाम हैं और कोई नाम नहीं है (अर्थात् आप सब नामों के परे हैं)॥3॥

*** सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय॥4॥

भावार्थ:-

आप सर्वरूप हैं, सब में व्याप्त हैं और सबके हृदय रूपी घर में सदा निवास करते हैं, (अतः) आप हमारा परिपालन कीजिए। (राग-द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता, जन्म-मृत्यु आदि) द्वंद्व, विपत्ति और जन्म-मत्यु के जाल को काट दीजिए। हे रामजी! आप हमारे हृदय में बसकर काम और मद का नाश कर दीजिए॥4॥

दोहा :

*** परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम। प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥34॥

भावार्थ:-

आप परमानंद स्वरूप, कृपा के धाम और मन की कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले हैं। हे श्री रामजी! हमको अपनी अविचल प्रेमाभक्ति दीजिए॥34॥

चौपाई :

*** देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि॥ प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु॥1॥

भावार्थ:-

हे रघुनाथजी! आप हमें अपनी अत्यंत पवित्र करने वाली और तीनों प्रकार के तापों और जन्म-मरण के क्लेशों का नाश करने वाली भक्ति दीजिए। हे शरणागतों की कामना पूर्ण करने के लिए कामधेनु और कल्पवृक्ष रूप प्रभो! प्रसन्न होकर हमें यही वर दीजिए॥1॥

*** भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुख दायक॥ मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय॥2॥

भावार्थ:-

हे रघुनाथजी! आप जन्म-मृत्यु रूप समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य मुनि के समान हैं। आप सेवा करने में सुलभ हैं तथा सब सुखों के देने वाले हैं। हे दीनबंधो! मन से उत्पन्न दारुण दुःखों का नाश कीजिए और (हम में) समदृष्टि का विस्तार कीजिए॥2॥

*** आस त्रास इरिषाद निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक॥ भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी॥3॥

भावार्थ:-

आप (विषयों की) आशा, भय और ईर्षा आदि के निवारण करने वाले हैं तथा विनय, विवेक और वैराग्य के विस्तार करने वाले हैं। हे राजाओं के शिरोमणि एवं पृथ्वी के भूषण श्री रामजी! संसृति (जन्म-मृत्यु के प्रवाह) रूपी नदी के लिए नौका रूप अपनी भक्ति प्रदान कीजिए॥3॥

*** मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज संकर॥ रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक॥4॥

भावार्थ:-

हे मुनियों के मन रूपी मानसरोवर में निरंतर निवास करने वाले हंस! आपके चरणकमल ब्रह्माजी और शिवजी के द्वारा वंदित हैं। आप रघुकुल के केतु, वेदमर्यादा के रक्षक और काल, कर्म, स्वभाव तथा गुण (रूप बंधनों) के भक्षक (नाशक) हैं॥4॥

*** तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन॥5॥

भावार्थ:-

आप तरन-तारन (स्वयं तरे हुए और दूसरों को तारने वाले) तथा सब दोषों को हरने वाले हैं। तीनों लोकों के विभूषण आप ही तुलसीदास के स्वामी हैं॥5॥

दोहा :

*** बार-बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ। ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ॥35॥

भावार्थ:-

प्रेम सहित बार-बार स्तुति करके और सिर नवाकर तथा अपना अत्यंत मनचाहा वर पाकर सनकादि मुनि ब्रह्मलोक को गए॥35॥

चौपाई :

*** सनकादिक बिधि लोक सिधाए। भ्रातन्ह राम चरन सिर नाए॥ पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं॥1॥

भावार्थ:-

सनकादि मुनि ब्रह्मलोक को चले गए। तब भाइयों ने श्री रामजी के चरणों में सिर नवाया। सब भाई प्रभु से पूछते सकुचाते हैं। (इसलिए) सब हनुमान्‌जी की ओर देख रहे हैं॥1॥

हनुमान्‌जी के द्वारा भरतजी का प्रश्न और श्री रामजी का उपदेश

*** सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी॥ अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना॥2॥

भावार्थ:-

वे प्रभु के श्रीमुख की वाणी सुनना चाहते हैं जिसे सुनकर सारे भ्रमों का नाश हो जाता है। अंतरयामी प्रभु सब जान गए और पूछने लगे- कहो हनुमान्‌! क्या बात है?॥2॥

*** जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता॥ नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं॥3॥

भावार्थ:-

तब हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर बोले- हे दीनदयालु भगवान्‌! सुनिए। हे नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करते मन में सकुचा रहे हैं॥3॥

*** तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ॥ सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना॥4॥

भावार्थ:-

(भगवान्‌ ने कहा-) हनुमान्‌! तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो। भरत के और मेरे बीच में कभी भी कोई अंतर (भेद) है? प्रभु के वचन सुनकर भरतजी ने उनके चरण पकड़ लिए (और कहा-) हे नाथ! हे शरणागत के दुःखों को हरने वाले! सुनिए॥4॥

दोहा :

*** नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह। केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह॥36॥

भावार्थ:-

हे नाथ! न तो मुझे कुछ संदेह है और न स्वप्न में भी शोक और मोह है। हे कृपा और आनंद के समूह! यह केवल आपकी ही कृपा का फल है॥36॥

चौपाई :

*** करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई॥ संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहु

बिधि बेद पुरानन्ह गाई॥1॥

भावार्थ:-

तथापि हे कृपानिधान! मैं आप से एक धृष्टता करता हूँ। मैं सेवक हूँ और आप सेवक को सुख देने वाले हैं (इससे मेरी दृष्टता को क्षमा कीजिए और मेरे प्रश्न का उत्तर देकर सुख दीजिए)। हे रघुनाथजी वेद-पुराणों ने संतों की महिमा बहुत प्रकार से गाई है॥1॥

***श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई॥ सुना चहउँ प्रभु तिन्हकर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन॥2॥

भावार्थ:-

आपने भी अपने श्रीमुख से उनकी बड़ाई की है और उन पर प्रभु (आप) का प्रेम भी बहुत है। हे प्रभो! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ। आप कृपा के समुद्र हैं और गुण तथा ज्ञान में अत्यंत निपुण हैं॥2॥

***संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥ संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता॥3॥

भावार्थ:-

हे शरणागत का पालन करने वाले! संत और असंत के भेद अलग-अलग करके मुझको समझाकर कहिए। (श्री रामजी ने कहा-) हे भाई! संतों के लक्षण (गुण) असंख्य हैं, जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं॥3॥

*** संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥ काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥4॥

भावार्थ:-

संत और असंतों की करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ी और चंदन का आचरण होता है। हे भाई! सुनो, कुल्हाड़ी चंदन को काटती है (क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही वृक्षों को काटना है), किंतु चंदन अपने स्वभाववश अपना गुण देकर उसे (काटने वाली कुल्हाड़ी को) सुगंध से सुवासित कर देता है॥4॥

दोहा :

*** ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड। अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड॥37॥

भावार्थ:-

इसी गुण के कारण चंदन देवताओं के सिरों पर चढ़ता है और जगत् का प्रिय हो रहा है और कुल्हाड़ी के मुख को यह दंड मिलता है कि उसको आग में जलाकर फिर घन से पीटते हैं॥37॥

चौपाई :

*** बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥ सम अभूतरिपु बिमद

बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥1॥
भावार्थ:-
संत विषयों में लंपट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्‌गुणों की खान होते हैं, उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे (सबमें, सर्वत्र, सब समय) समता रखते हैं, उनके मन कोई उनका शत्रु नहीं है। वे मद से रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग किए हुए रहते हैं॥1॥
*** कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥ सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥2॥
भावार्थ:-
उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनों पर दया करते हैं तथा मन, वचन और कर्म से मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबको सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणों के समान हैं॥2॥
*** बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥ सीतलता सरलता मयत्री। द्‌विज पद प्रीति धर्म जनयत्री॥3॥
भावार्थ:-
उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नाम के परायण होते है। शांति, वैराग्य, विनय और प्रसन्नता के घर होते हैं। उनमें शीलता, सरलता, सबके प्रति मित्र भाव और ब्राह्मण के चरणों में प्रीति होती है, जो धर्मों को उत्पन्न करने वाली है॥3॥
*** ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥ सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥4॥
भावार्थ:-
हे तात! ये सब लक्षण जिसके हृदय में बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना। जो शम (मन के निग्रह), दम (इंद्रियों के निग्रह), नियम और नीति से कभी विचलित नहीं होते और मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते,॥4॥
दोहा :
***निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज। ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज॥38॥
भावार्थ:-
जिन्हें निंदा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकमलों में जिनकी ममता है, वे गुणों के धाम और सुख की राशि संतजन मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं॥38॥
चौपाई :
*** सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥ तिन्ह कर संग सदा दुखदाई।

जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥1॥

भावार्थ:-

अब असंतों दुष्टों का स्वभाव सुनो, कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिए। उनका संग सदा दुःख देने वाला होता है। जैसे हरहाई (बुरी जाति की) गाय कपिला (सीधी और दुधार) गाय को अपने संग से नष्ट कर डालती है॥1॥

***खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥ जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥2॥

भावार्थ:-

बदुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे पराई संपत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरे की निंदा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्ते में पड़ी निधि (खजाना) पा ली हो॥2॥

*** काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥ बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥3॥

भावार्थ:-

वे काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसी से वैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ बुराई भी करते हैं॥3॥

***झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना। बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥4॥

भावार्थ:-

उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है। (अर्थात् वे लेने-देने के व्यवहार में झूठ का आश्रय लेकर दूसरों का हक मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपए ले लिए, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार खाते हैं चने की रोटी और कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आए। अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया भोजन से वैराग्य है, इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं।) जैसे मोर साँपों को भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं। (परंतु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं)॥4॥

दोहा :

*** पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद। ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥39॥

भावार्थ:-

वे दूसरों से द्रोह करते हैं और पराई स्त्री, पराए धन तथा पराई निंदा में आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर शरीर धारण किए हुए राक्षस ही हैं॥39॥

चौपाई :

***लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥ काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥1॥

भावार्थ:-

लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है (अर्थात् लोभ ही से वे सदा घिरे हुए रहते हैं)। वे पशुओं के समान आहार और मैथुन के ही परायण होते हैं, उन्हें यमपुर का भय नहीं लगता। यदि किसी की बड़ाई सुन पाते हैं, तो वे ऐसी (दुःखभरी) साँस लेते हैं मानों उन्हें जूड़ी आ गई हो॥1॥

*** जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥ स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥2॥

भावार्थ:-

और जब किसी की विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगत्भर के राजा हो गए हों। वे स्वार्थपरायण, परिवार वालों के विरोधी, काम और लोभ के कारण लंपट और अत्यंत क्रोधी होते हैं॥2॥

*** मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥ करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा॥3॥

भावार्थ:-

वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, (साथ ही अपने संग से) दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरों से द्रोह करते हैं। उन्हें न संतों का संग अच्छा लगता है, न भगवान् की कथा ही सुहाती है॥3॥

*** अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥ बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा॥4॥

भावार्थ:-

वे अवगुणों के समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागयुक्त), वेदों के निंदक और जबर्दस्ती पराए धन के स्वामी (लूटने वाले) होते हैं। वे दूसरों से द्रोह तो करते ही हैं, परंतु ब्राह्मण द्रोह विशेषता से करते हैं। उनके हृदय में दम्भ और कपट भरा रहता है, परंतु वे ऊपर से सुंदर वेष धारण किए रहते हैं॥4॥

दोहा :

*** ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं। द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥40॥

भावार्थ:-

ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़े से होंगे और

कलियुग में तो इनके झुंड के झुंड होंगे॥40॥

चौपाई :

*** पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥ निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥1॥

भावार्थ:-

हे भाई! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे तात! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय (निश्चित सिद्धांत) मैंने तुमसे कहा है, इस बात को पण्डित लोग जानते हैं॥1॥

*** नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥ लकरहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥2॥

भावार्थ:-

मनुष्य का शरीर धारण करके जो लोग दूसरों को दुःख पहुँचाते हैं उनको जन्म-मृत्यु के महान् संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं, इसी से उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है॥2॥

*** कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फलदाता॥ अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने॥3॥

भावार्थ:-

हे भाई! मैं उनके लिए कालरूप (भयंकर) हूँ और उनके अच्छे और बुरे कर्मों का (यथायोग्य) फल देने वाला हूँ! ऐसा विचार कर जो लोग परम चतुर हैं वे संसार (के प्रवाह) को दुःख रूप जानकर मुझे ही भजते हैं॥3॥

***त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक॥ संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥4॥

भावार्थ:-

इसी से वे शुभ और अशुभ फल देने वाले कर्मों को त्यागकर देवता, मनुष्य और मुनियों के नायक मुझको भजते हैं। (इस प्रकार) मैंने संतों और असंतों के गुण कहे। जिन लोगों ने इन गुणों को समझ रखा है, वे जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ते॥4॥

दोहा :

*** सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक। गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥41॥

भावार्थ:-

हे तात! सुनो, माया से रचे हुए ही अनेक (सब) गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है)। गुण (विवेक) इसी में है कि दोनों ही न देखे जाएँ, इन्हें देखना ही अविवेक है॥41॥

चौपाई :

*** श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदयँ समाई॥ करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हियँ हरष अपारा॥1॥

भावार्थ:-

भगवान के श्रीमुख से ये वचन सुनकर सब भाई हर्षित हो गए। प्रेम उनके हृदयों में समाता नहीं। वे बार-बार बड़ी विनती करते हैं। विशेषकर हनुमान्‌जी के हृदय में अपार हर्ष है॥1॥

***पुनि रघुपति निज मंदिर गए। एहि बिधि चरित करत नित नए॥ बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं॥2॥ `

भावार्थ:-

तदनन्तर श्री रामचंद्रजी अपने महल को गए। इस प्रकार वे नित्य नई लीला करते हैं। नारद मुनि अयोध्या में बार-बार आते हैं और आकर श्री रामजी के पवित्र चरित्र गाते हैं॥2॥

*** नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥ सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं॥3॥

भावार्थ:-

मुनि यहाँ से नित्य नए-नए चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोक में जाकर सब कथा कहते हैं। ब्रह्माजी सुनकर अत्यंत सुख मानते हैं (और कहते हैं-) हे तात! बार-बार श्री रामजी के गुणों का गान करो॥3॥

***सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥ सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी॥4॥

भावार्थ:-

सनकादि मुनि नारदजी की सराहना करते हैं। यद्यपि वे (सनकादि) मुनि ब्रह्मनिष्ठ हैं, परंतु श्री रामजी का गुणगान सुनकर वे भी अपनी ब्रह्मसमाधि को भूल जाते हैं और आदरपूर्वक उसे सुनते हैं। वे (रामकथा सुनने के) श्रेष्ठ अधिकारी हैं॥4॥

दोहा :

*** जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान। जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान॥42॥

भावार्थ:-

सनकादि मुनि जैसे जीवन्मुक्त और ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भी ध्यान (ब्रह्म समाधि) छोड़कर श्री रामजी के चरित्र सुनते हैं। यह जानकर भी जो श्री हरि की कथा से प्रेम नहीं करते, उनके हृदय (सचमुच ही) पत्थर (के समान) हैं॥42॥

श्री रामजी का प्रजा को उपदेश (श्री रामगीता), पुरवासियों की कृतज्ञता

चौपाई :

***एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए॥ बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन॥1॥

भावार्थ:-

एक बार श्री रघुनाथजी के बुलाए हुए गुरुवशिष्ठजी, ब्राह्मण और अन्य सब नगर निवासी सभा में आए। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथायोग्य बैठ गए, तब भक्तों के जन्म-मरण को मिटाने वाले श्री रामजी वचन बोले-॥1॥

*** सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥ नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥2॥

भावार्थ:-

हे समस्त नगर निवासियों! मेरी बात सुनिए। यह बात मैं हृदय में कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूँ। न अनीति की बात कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रभुता ही है।इसलिए (संकोच और भय छोड़कर, ध्यान देकर) मेरी बातों को सुन लो और (फिर) यदि तुम्हें अच्छी लगे, तो उसके अनुसार करो!॥2॥

*** सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥ जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥3॥

भावार्थ:-

वही मेरा सेवक है और वही प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने। हे भाई! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूँ तो भय भुलाकर (बेखटके) मुझे रोक देना॥3॥

*** बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥ साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥4॥

भावार्थ:-

बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है। सब ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है (कठिनता से मिलता है)। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया,॥4॥

दोहा :

*** सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताई। सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताई॥43॥

भावार्थ:-

वह परलोक में दुःख पाता है, सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा (अपना दोष न समझकर) काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है॥43॥

चौपाई :

*** एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥ नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥1॥

भावार्थ:-

हे भाई! इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषयभोग नहीं है (इस जगत् के भोगों की तो बात ही क्या) स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अंत में दुःख देने वाला है। अतः जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं॥1॥

*** ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥ आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥2॥

भावार्थ:-

जो पारसमणि को खोकर बदले में घुँघची ले लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान) नहीं कहता। यह अविनाशी जीव (अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज) चार खानों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है॥2॥

*** फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥ कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥3॥

भावार्थ:-

माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ (इनके वश में हुआ) यह सदा भटकता रहता है। बिना ही कारण स्नेह करने वाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्य का शरीर देते हैं॥3॥

*** नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥ करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥4॥

भावार्थ:-

यह मनुष्य का शरीर भवसागर (से तारने) के लिए बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेने वाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ (कठिनता से मिलने वाले) साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपा से सहज ही) उसे प्राप्त हो गए हैं,॥4॥

दोहा :

*** जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥44॥

भावार्थ:-

जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे, वह कृतघ्न और मंद बुद्धि है और आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है॥44॥

चौपाई :

*** जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥ सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥1॥

भावार्थ:-

यदि परलोक में और यहाँ दोनों जगह सुख चाहते हो, तो मेरे वचन सुनकर उन्हें हृदय में दृढ़ता से पकड़ रखो। हे भाई! यह मेरी भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखदायक है, पुराणों और वेदों ने इसे गाया है॥1॥

*** ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥ करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥2॥

भावार्थ:-

ज्ञान अगम (दुर्गम) है (और) उसकी प्राप्ति में अनेकों विघ्न हैं। उसका साधन कठिन है और उसमें मन के लिए कोई आधार नहीं है। बहुत कष्ट करने पर कोई उसे पा भी लेता है, तो वह भी भक्तिरहित होने से मुझको प्रिय नहीं होता॥2॥

*** भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥ पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥3॥

भावार्थ:-

भक्ति स्वतंत्र है और सब सुखों की खान है, परंतु सत्संग (संतों के संग) के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते और पुण्य समूह के बिना संत नहीं मिलते। सत्संगति ही संसृति (जन्म-मरण के चक्र) का अंत करती है॥3॥

***पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥ सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥4॥

भावार्थ:-

जगत् में पुण्य एक ही है, (उसके समान) दूसरा नहीं। वह है- मन, कर्म और वचन से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करना। जो कपट का त्याग करके ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं॥4॥

दोहा :

*** औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥45॥

भावार्थ:-

और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरजी के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता॥45॥

चौपाई :

*** कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। सरल सुभाव न मन

कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥1॥
भावार्थ:-
कहो तो, भक्ति मार्ग में कौन-सा परिश्रम है? इसमें न योग की आवश्यकता है, न यज्ञ, जप, तप और उपवास की! (यहाँ इतना ही आवश्यक है कि) सरल स्वभाव हो, मन में कुटिलता न हो और जो कुछ मिले उसी में सदा संतोष रखे॥1॥
*** मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥ बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥2॥
भावार्थ:-
मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्यों की आशा करता है, तो तुम्हीं कहो, उसका क्या विश्वास है? (अर्थात् उसकी मुझ पर आस्था बहुत ही निर्बल है)। बहुत बात बढ़ाकर क्या हूँ? हे भाइयों! मैं तो इसी आचरण के वश में हूँ॥2॥
*** बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥ अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥3॥
भावार्थ:-
न किसी से वैर करे, न लड़ाई-झगड़ा करे, न आशा रखे, न भय ही करे। उसके लिए सभी दिशाएँ सदा सुखमयी हैं। जो कोई भी आरंभ (फल की इच्छा से कर्म) नहीं करता, जिसका कोई अपना घर नहीं है (जिसकी घर में ममता नहीं है), जो मानहीन, पापहीन और क्रोधहीन है, जो (भक्ति करने में) निपुण और विज्ञानवान् है॥3॥
*** प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥ भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥4॥
भावार्थ:-
संतजनों के संसर्ग (सत्संग) से जिसे सदा प्रेम है, जिसके मन में सब विषय यहाँ तक कि स्वर्ग और मुक्ति तक (भक्ति के सामने) तृण के समान हैं, जो भक्ति के पक्ष में हठ करता है, पर (दूसरे के मत का खण्डन करने की) मूर्खता नहीं करता तथा जिसने सब कुतर्कों को दूर बहा दिया है ॥4॥ दोहा -
*** मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह। ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥46॥
भावार्थ:-
जो मेरे गुण समूहों के और मेरे नाम के परायण है, एवं ममता, मद और मोह से रहित है, उसका सुख वही जानता है, जो (परमात्मारूप) परमानन्दराशि को प्राप्त है॥46॥ चौपाई-
*** सुनत सुधा सम बचन राम के । गहे सबनि पद कृपाधाम के॥ जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे॥1॥
भावार्थ:-

श्रीरामचन्द्रजी के अमृत के समान वचन सुनकर सबने कृपाधाम के चरण पकड़ लिए (और कहा-) हे कृपानिधान! आप हमारे माता, पिता, गुरु, भाई सब कुछ हैं और प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं॥1॥

*** तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी॥ असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥2॥

भावार्थ:-

और हे शरणागत के दुःख हरने वाले रामजी! आप ही हमारे शरीर, धन, घर-द्वार और सभी प्रकार से हित करने वाले हैं। ऐसी शिक्षा आपके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता। माता-पिता (हितैषी हैं और शिक्षा भी देते हैं) परन्तु वे भी स्वार्थपरायण हैं (इसलिए ऐसी परम हितकारी शिक्षा नहीं देते)॥2॥

*** हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥ स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥3॥

भावार्थ:-

हे असुरों के शत्रु! जगत् में बिना हेतु के (निःस्वार्थ) उपकार करने वाले तो दो ही हैं- एक आप, दूसरे आपके सेवक। जगत् में (शेष) सभी स्वार्थ के मित्र हैं। हे प्रभो! उनमें स्वप्न में भी परमार्थ का भाव नहीं है॥3॥

*** सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने॥ निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई॥4॥

भावार्थ:-

सबके प्रेम रस में सने हुए वचन सुनकर श्री रघुनाथजी हृदय में हर्षित हुए। फिर आज्ञा पाकर सब प्रभु की सुन्दर बातचीत का वर्णन करते हुए अपनेअपने घर गए॥4॥ दोहा -

*** उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप। ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप॥47॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! अयोध्या में रहने वाले पुरुष और स्त्री सभी कृतार्थस्वरूप हैं, जहाँ स्वयं सच्चिदानंदघन ब्रह्म श्री रघुनाथजी राजा हैं॥47॥

श्री राम-वशिष्ठ संवाद, श्री रामजी का भाइयों सहित अमराई में जाना

चौपाई :

***एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए॥ अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा॥1॥

भावार्थ:-

एक बार मुनि वशिष्ठजी वहाँ आए जहाँ सुंदर सुख के धाम श्री रामजी थे। श्री रघुनाथजी ने उनका बहुत ही आदर-सत्कार किया और उनके चरण धोकर चरणामृत लिया॥1॥

*** राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी॥ देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा॥2॥

भावार्थ:-

मुनि ने हाथ जोड़कर कहा- हे कृपासागर श्री रामजी! मेरी कुछ विनती सुनिए! आपके आचरणों (मनुष्योचित चरित्रों) को देख-देखकर मेरे हृदय में अपार मोह (भ्रम) होता है॥2॥

*** महिमा अमिति बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना॥ उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा॥3॥

भावार्थ:-

हे भगवन्! आपकी महिमा की सीमा नहीं है, उसे वेद भी नहीं जानते। फिर मैं किस प्रकार कह सकता हूँ? पुरोहिती का कर्म (पेशा) बहुत ही नीचा है। वेद, पुराण और स्मृति सभी इसकी निंदा करते हैं॥3॥

*** जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही॥ परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा॥4॥

भावार्थ:-

जब मैं उसे (सूर्यवंश की पुरोहिती का काम) नहीं लेता था, तब ब्रह्माजी ने मुझे कहा था- हे पुत्र! इससे तुमको आगे चलकर बहुत लाभ होगा। स्वयं ब्रह्म परमात्मा मनुष्य रूप धारण कर रघुकुल के भूषण राजा होंगे॥4॥

दोहा :

*** तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान। जा कुहँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन॥48॥

भावार्थ:-

तब मैंने हृदय में विचार किया कि जिसके लिए योग, यज्ञ, व्रत और दान किए जाते हैं उसे मैं इसी कर्म से पा जाऊँगा, तब तो इसके समान दूसरा कोई धर्म ही नहीं है॥48॥

चौपाई :

*** जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥ ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥1॥

भावार्थ:-

जप, तप, नियम, योग, अपने-अपने (वर्णाश्रम के) धर्म, श्रुतियों से उत्पन्न (वेदविहित) बहुत से शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम (इंद्रियनिग्रह), तीर्थस्नान आदि जहाँ तक वेद और संतजनों ने धर्म कहे हैं (उनके करने का)-॥1॥

*** आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥ तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥2॥

भावार्थ:-

(तथा) हे प्रभो! अनेक तंत्र, वेद और पुराणों के पढ़ने और सुनने का सर्वोत्तम फल एक हीहै और सब साधनों का भी यही एक सुंदर फल है कि आपके चरणकमलों में सदा-सर्वदा प्रेम हो॥2॥

*** छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ॥ प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥3॥

भावार्थ:-

मैल से धोने से क्या मैल छूटता है? जल के मथने से क्या कोई घी पा सकता है? (उसी प्रकार) हे रघुनाथजी! प्रेमभक्ति रूपी (निर्मल) जल के बिना अंतःकरण का मल कभी नहीं जाता॥3॥

*** सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित॥ दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई॥4॥

भावार्थ:-

वही सर्वज्ञ है, वही तत्त्वज्ञ और पंडित है, वही गुणों का घर और अखंड विज्ञानवान् है, वही चतुर और सब सुलक्षणों से युक्त है, जिसका आपके चरण कमलों में प्रेम है॥4॥

दोहा :

*** नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु। जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥49॥

भावार्थ:-

जहे नाथ! हे श्री रामजी! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, कृपा करके दीजिए। प्रभु (आप) के चरणकमलों में मेरा प्रेम जन्म-जन्मांतर में भी कभी न घटे॥49॥

चौपाई :

*** अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आए। कृपासिंधु के मन अति भाए॥ हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता॥1॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर मुनि वशिष्ठजी घर आए। वे कृपासागर श्री रामजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। तदनन्तर सेवकों को सुख देने वाले श्री रामजी ने हनुमान्‌जी तथा भरतजी आदि भाइयों को साथ लिया,॥1॥

*** पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मगावत भए॥ देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे॥2॥

भावार्थ:-

और फिर कृपालु श्री रामजी नगर के बाहर गए और वहाँ उन्होंने हाथी, रथ और घोड़े मँगवाए।

उन्हें देखकर कृपा करके प्रभु ने सबकी सराहना की और उनको जिस-जिसने चाहा, उस-उसको उचित जानकर दिया॥2॥

*** हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ सीतल अवँराई॥ भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥3॥

भावार्थ:-

संसार के सभी श्रमों को हरने वाले प्रभु ने (हाथी, घोड़े आदि बँटने में) श्रम का अनुभव किया और (श्रम मिटाने को) वहाँ गए जहाँ शीतल अमराई (आमों का बगीचा) थी। वहाँ भरतजी ने अपना वस्त्र बिछा दिया। प्रभु उस पर बैठ गए और सब भाई उनकी सेवा करने लगे॥3॥

*** मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥ हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥4॥ गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥5॥

भावार्थ:-

उस समय पवनपुत्र हनुमान्‌जी पवन (पंखा) करने लगे। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। (शिवजी कहने लगे-) हे गिरिजे! हनुमान्‌जी के समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्री रामजी के चरणों का प्रेमी ही है, जिनके प्रेम और सेवा की (स्वयं) प्रभु ने अपने श्रीमुख से बार-बार बड़ाई की है॥4-5॥

नारदजी का आना और स्तुति करके ब्रह्मलोक को लौट जाना

दोहा :

*** तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन। गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन॥50॥

भावार्थ:-

उसी अवसर पर नारदमुनि हाथ में वीणा लिए हुए आए। वे श्री रामजी की सुंदर और नित्य नवीन रहने वाली कीर्ति गाने लगे॥50॥

चौपाई :

*** मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥ नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि॥1॥

भावार्थ:-

कृपापूर्वक देख लेने मात्र से शोक के छुड़ाने वाले हे कमलनयन! मेरी ओर देखिए (मुझ पर भी कृपादृष्टि कीजिए) हे हरि! आप नीलकमल के समान श्यामवर्ण और कामदेव के शत्रु महादेवजी के हृदय कमल के मकरन्द (प्रेम रस) के पान करने वाले भ्रमर हैं॥1॥

*** जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥ भूसुर ससि नव बृंद बलाहक।

असरन सरन दीन जन गाहक॥2॥
भावार्थ:-
आप राक्षसों की सेना के बल को तोड़ने वाले हैं। मुनियों और संतजनों को आनंद देने वाले और पापों का नाश करने वाले हैं। ब्राह्मण रूपी खेती के लिए आप नए मेघसमूह हैं और शरणहीनों को शरण देने वाले तथा दीन जनों को अपने आश्रय में ग्रहण करने वाले हैं॥2॥
*** भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित॥ रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर॥3॥
भावार्थ:-
अपने बाहुबल से पृथ्वी के बड़े भारी बोझ को नष्ट करने वाले, खर दूषण और विराध के वध करने में कुशल, रावण के शत्रु, आनंदस्वरूप, राजाओं में श्रेष्ठ और दशरथ के कुल रूपी कुमुदिनी के चंद्रमा श्री रामजी! आपकी जय हो॥3॥
*** सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम॥ कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन॥4॥
भावार्थ:-
आपका सुंदर यश पुराणों, वेदों में और तंत्रादि शास्त्रों में प्रकट है! देवता, मुनि और संतों के समुदाय उसे गाते हैं। आप करुणा करने वाले और झूठे मद का नाश करने वाले, सब प्रकार से कुशल (निपुण) श्री अयोध्याजी के भूषण ही हैं॥4॥
*** कलि मल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन॥5॥
भावार्थ:-
आपका नाम कलियुग के पापों को मथ डालने वाला और ममता को मारने वाला है। हे तुलसीदास के प्रभु! शरणागत की रक्षा कीजिए॥5॥
दोहा :
*** प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम। सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम॥51॥
भावार्थ:-
श्री रामचंद्रजी के गुणसमूहों का प्रेमपूवक वर्णन करके मुनि नारदजी शोभा के समुद्र प्रभु को हृदय में धरकर जहाँ ब्रह्मलोक है, वहाँ चले गए॥51॥

शिव-पार्वती संवाद, गरुड़ मोह, गरुड़जी का काकभुशुण्डि से रामकथा और राम महिमा सुनना

चौपाई :

*** गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा॥ राम चरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा॥1॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे गिरिजे! सुनो, मैंने यह उज्ज्वल कथा, जैसी मेरी बुद्धि थी, वैसी पूरी कह डाली। श्री रामजी के चरित्र सौ करोड़ (अथवा) अपार हैं। श्रुति और शारदा भी उनका वर्णन नहीं कर सकते॥1॥

*** राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी॥ जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं॥2॥

भावार्थ:-

भगवान् श्री राम अनंत हैं, उनके गुण अनंत हैं, जन्म, कर्म और नाम भी अनंत हैं। जल की बूँदें और पृथ्वी के रजकण चाहे गिने जा सकते हों, पर श्री रघुनाथजी के चरित्र वर्णन करने से नहीं चूकते॥2॥

*** बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी॥ उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥3॥

भावार्थ:-

यह पवित्र कथा भगवान् के परम पद को देने वाली है। इसके सुनने से अविचल भक्ति प्राप्त होती है। हे उमा! मैंने वह सब सुंदर कथा कही जो काकभुशुण्डिजी ने गरुड़जी को सुनाई थी॥3॥

*** कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी॥ सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी॥4॥

भावार्थ:-

मैंने श्री रामजी के कुछ थोड़े से गुण बखान कर कहे हैं। हे भवानी! सो कहो, अब और क्या कहूँ? श्री रामजी की मंगलमयी कथा सुनकर पार्वतीजी हर्षित हुईं और अत्यंत विनम्र तथा कोमल वाणी बोलीं-॥4॥

*** धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी॥5॥

भावार्थ:-

हे त्रिपुरारि। मैं धन्य हूँ, धन्य-धन्य हूँ जो मैंने जन्म-मृत्यु के भय को हरण करने वाले श्री रामजी के गुण (चरित्र) सुने॥5॥

दोहा :

*** तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह। जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह॥52 क॥

भावार्थ:-

हे कृपाधाम। अब आपकी कृपा से मैं कृतकृत्य हो गई। अब मुझे मोह नहीं रह गया। हे प्रभु मैं सच्चिदानंदघन प्रभु श्री रामजी के प्रताप को जान गई॥52 (क)॥

***नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर॥52 ख॥

भावार्थ:-

हे नाथ! आपका मुख रूपी चंद्रमा श्री रघुवीर की कथा रूपी अमृत बरसाता है। हे मतिधीर मेरा मन कर्णपुटों से उसे पीकर तृप्त नहीं होता॥52 (ख)॥

चौपाई :

*** राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥ जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥1॥

भावार्थ:-

श्री रामजी के चरित्र सुनते-सुनते जो तृप्त हो जाते हैं (बस कर देते हैं), उन्होंने तो उसका विशेष रस जाना ही नहीं। जो जीवन्मुक्त महामुनि हैं, वे भी भगवान् के गुण निरंतर सुनते रहते हैं॥1॥

*** भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥ बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥2॥

भावार्थ:-

जो संसार रूपी सागर का पार पाना चाहता है, उसके लिए तो श्री रामजी की कथा दृढ़ नौका के समान है। श्री हरि के गुणसमूह तो विषयी लोगों के लिए भी कानों को सुख देने वाले और मन को आनंद देने वाले हैं॥2॥

*** श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं॥ ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती॥3॥

भावार्थ:-

जगत् में कान वाला ऐसा कौन है, जिसे श्री रघुनाथजी के चरित्र न सुहाते हों। जिन्हें श्री रघुनाथजी की कथा नहीं सुहाती, वे मूर्ख जीव तो अपनी आत्मा की हत्या करने वाले हैं॥3॥

*** हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा॥ तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभुशण्डि गरुड़ प्रति गाई॥4॥

भावार्थ:-

हे नाथ! आपने श्री रामचरित्र मानस का गान किया, उसे सुनकर मैंने अपार सुख पाया। आपने जो यह कहा कि यह सुंदर कथा काकभुशुण्डिजी ने गरुड़जी से कही थी-॥4॥

दोहा :

*** बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह। बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह॥53॥

भावार्थ:-

सो कौए का शरीर पाकर भी काकभुशुण्डि वैराग्य, ज्ञान और विज्ञान में दृढ़ हैं, उनका श्री रामजी

के चरणों में अत्यंत प्रेम है और उन्हें श्री रघुनाथजी की भक्ति भी प्राप्त है, इस बात का मुझे परम संदेह हो रहा है॥53॥

चौपाई :

*** नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होई धर्म ब्रतधारी॥ धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥1॥

भावार्थ:-

हे त्रिपुरारि! सुनिए, हजारों मनुष्यों में कोई एक धर्म के व्रत का धारण करने वाला होता है और करोड़ों धर्मात्माओं में कोई एक विषय से विमुख (विषयों का त्यागी) और वैराग्य परायण होता है॥1॥

***कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥ ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥2॥

भावार्थ:-

श्रुति कहती है कि करोड़ों विरक्तों में कोई एक ही सम्यक् (यथार्थ) ज्ञान को प्राप्त करता है और करोड़ों ज्ञानियों में कोई एक ही जीवन मुक्त होता है। जगत् में कोई विरला ही ऐसा (जीवन मुक्त) होगा॥2॥

*** तिन्ह सहस्र महुँ सबसुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी॥ धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥3॥

भावार्थ:-

हजारों जीवन मुक्तों में भी सब सुखों की खान, ब्रह्म में लीन विज्ञानवान् पुरुष और भी दुर्लभ है। धर्मात्मा, वैराग्यवान्, ज्ञानी, जीवन मुक्त और ब्रह्मलीन-॥3॥

***सत ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥ सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई॥4॥

भावार्थ:-

इन सबमें भी हे देवाधिदेव महादेवजी! वह प्राणी अत्यंत दुर्लभ है जो मद और माया से रहित होकर श्री रामजी की भक्ति के परायण हो। हे विश्वनाथ! ऐसी दुर्लभ हरि भक्ति को कौआ कैसे पा गया, मुझे समझाकर कहिए॥4॥

दोहा :

*** राम परायन ग्यान रत गुनागार मति धीर। नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर॥54॥

भावार्थ:-

हे नाथ! कहिए, (ऐसे) श्री रामपरायण, ज्ञाननिरत, गुणधाम और धीरबुद्धि भुशुण्डिजी ने कौए का शरीर किस कारण पाया?॥54॥

चौपाई :

*** यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा॥ तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी॥1॥

भावार्थ:-

हे कृपालु! बताइए, उस कौए ने प्रभु का यह पवित्र और सुंदर चरित्र कहाँ पाया? और हे कामदेव के शत्रु! यह भी बताइए, आपने इसे किस प्रकार सुना? मुझे बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है॥1॥

*** गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी। तेहिं केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई॥2॥

भावार्थ:-

गरुड़जी तो महान् ज्ञानी, सद्गुणों की राशि, श्री हरि के सेवक और उनके अत्यंत निकट रहने वाले (उनके वाहन ही) हैं। उन्होंने मुनियों के समूह को छोड़कर, कौए से जाकर हरिकथा किस कारण सुनी?॥2॥

*** कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा॥ गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई॥3॥

भावार्थ:-

कहिए, काकभुशुण्डि और गरुड़ इन दोनों हरिभक्तों की बातचीत किस प्रकार हुई? पार्वतीजी की सरल, सुंदर वाणी सुनकर शिवजी सुख पाकर आदर के साथ बोले॥3॥

*** धन्य सती पावन मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी॥ सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा॥4॥

भावार्थ:-

हे सती! तुम धन्य हो, तुम्हारी बुद्धि अत्यंत पवित्र है। श्री रघुनाथजी के चरणों में तुम्हारा कम प्रेम नहीं है। (अत्यधिक प्रेम है)। अब वह परम पवित्र इतिहास सुनो, जिसे सुनने से सारे लोक के भ्रम का नाश हो जाता है॥4॥

***उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा॥5॥

भावार्थ:-

तथा श्री रामजी के चरणों में विश्वास उत्पन्न होता है और मनुष्य बिना ही परिश्रम संसार रूपी समुद्र से तर जाता है॥5॥

दोहा :

*** ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ। सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाई॥55॥

भावार्थ:-

पक्षीराज गरुड़जी ने भी जाकर काकभुशुण्डिजी से प्रायः ऐसे ही प्रश्न किए थे। हे उमा! मैं वह सब आदरसहित कहूँगा, तुम मन लगाकर सुनो॥55॥

चौपाई :

*** मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि॥ प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा॥1॥

भावार्थ:-

मैंने जिस प्रकार वह भव (जन्म-मृत्यु) से छुड़ाने वाली कथा सुनी, हे सुमुखी! हे सुलोचनी! वह प्रसंग सुनो। पहले तुम्हारा अवतार दक्ष के घर हुआ था। तब तुम्हारा नाम सती था॥1॥

*** दच्छ जग्य तव भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना॥ मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा॥2॥

भावार्थ:-

दक्ष के यज्ञ में तुम्हारा अपमान हुआ। तब तुमने अत्यंत क्रोध करके प्राण त्याग दिए थे और फिर मेरे सेवकों ने यज्ञ विध्वंस कर दिया था। वह सारा प्रसंग तुम जानती ही हो॥2॥

*** तब अति सोच भयउ मन मोरें। दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें॥ सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउँ बेरागा॥3॥

भावार्थ:-

तब मेरे मन में बड़ा सोच हुआ और हे प्रिये! मैं तुम्हारे वियोग से दुःखी हो गया। मैं विरक्त भाव से सुंदर वन, पर्वत, नदी और तालाबों का कौतुक (दृश्य) देखता फिरता था॥3॥

*** गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी॥ तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए॥4॥

भावार्थ:-

सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में और भी दूर, एक बहुत ही सुंदर नील पर्वत है। उसके सुंदर स्वर्णमय शिखर हैं, (उनमें से) चार सुंदर शिखर मेरे मन को बहुत ही अच्छे लगे॥4॥

*** तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला॥ सैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा॥5॥

भावार्थ:-

उन शिखरों में एक-एक पर बरगद, पीपल, पाकर और आम का एक-एक विशाल वृक्ष है। पर्वत के ऊपर एक सुंदर तालाब शोभित है, जिसकी मणियों की सीढ़ियाँ देखकर मन मोहित हो जाता है॥5॥

दोहा :

*** सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग। कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग॥56॥

भावार्थ:-

उसका जल शीतल, निर्मल और मीठा है, उसमें रंग-बिरंगे बहुत से कमल खिले हुए हैंहंसगण

मधुर स्वर से बोल रहे हैं और भौंरे सुंदर गुंजार कर रहे हैं॥56॥

चौपाई :

*** तेहिं गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कल्पांत न होई॥ माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका॥1॥

भावार्थ:-

उस सुंदर पर्वत पर वही पक्षी (काकभुशुण्डि) बसता है। उसका नाश कल्प के अंत में भी नहीं होता। मायारचित अनेकों गुण-दोष, मोह, काम आदि अविवेक,॥1॥

*** रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं॥ तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा॥2॥

भावार्थ:-

जो सारे जगत् में छा रहे हैं, उस पर्वत के पास भी कभी नहीं फटकते। वहाँ बसकर जिस प्रकार वह काग हरि को भजता है, हे उमा! उसे प्रेम सहित सुनो॥2॥

***पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई॥ अँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा॥3॥

भावार्थ:-

वह पीपल के वृक्ष के नीछे ध्यान धरता है। पाकर के नीचे जपयज्ञ करता है। आम की छाया में मानसिक पूजा करता है। श्री हरि के भजन को छोड़कर उसे दूसरा कोई काम नहीं है॥3॥

*** बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा॥ राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना॥4॥

भावार्थ:-

बरगद के नीचे वह श्री हरि की कथाओं के प्रसंग कहता है। वहाँ अनेकों पक्षी आते और कथा सुनते हैं। वह विचित्र रामचरित्र को अनेकों प्रकार से प्रेम सहित आदरपूर्वक गान करता है॥4॥

***सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहिं ताला॥ जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा॥5॥

भावार्थ:-

सब निर्मल बुद्धि वाले हंस, जो सदा उस तालाब पर बसते हैं, उसे सुनते हैं। जब मैंने वहाँ जाकर यह कौतुक (दृश्य) देखा, तब मेरे हृदय में विशेष आनंद उत्पन्न हुआ॥5॥

दोहा :

*** तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास। सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥57॥

भावार्थ:-

तब मैंने हंस का शरीर धारण कर कुछ समय वहाँ निवास किया और श्री रघुनाथजी के गुणों को

आदर सहित सुनकर फिर कैलास को लौट आया॥57॥

चौपाई :

*** गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा॥ अब सो कथा सुनहु जेहि हेतु। गयउ काग पहिं खग कुल केतू॥1॥

भावार्थ:-

हे गिरिजे! मैंने वह सब इतिहास कहा कि जिस समय मैं काकभुशुण्डि के पास गया था। अब वह कथा सुनो जिस कारण से पक्षी कुल के ध्वजा गरुड़जी उस काग के पास गए थे॥1॥

*** जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा। समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा॥ इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो॥2॥

भावार्थ:-

जब श्री रघुनाथजी ने ऐसी रणलीला की जिस लीला का स्मरण करने से मुझे लज्जा होती है- मेघनाद के हाथों अपने को बँधा लिया, तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा॥2॥

*** बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा॥ प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती॥3॥

भावार्थ:-

सर्पों के भक्षक गरुड़जी बंधन काटकर गए, तब उनके हृदय में बड़ा भारी विषाद उत्पन्न हुआ। प्रभु के बंधन को स्मरण करके सर्पों के शत्रु गरुड़जी बहुत प्रकार से विचार करने लगे॥3॥

*** ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा॥ सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं॥4॥

भावार्थ:-

जो व्यापक, विकाररहित, वाणी के पति और माया-मोह से परे ब्रह्म परमेश्वर हैं, मैंने सुना था कि जगत् में उन्हीं का अवतार है। पर मैंने उस (अवतार) का प्रभाव कुछ भी नहीं देखा॥4॥

दोहा :

***भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम। खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥58॥

भावार्थ:-

जिनका नाम जपकर मनुष्य संसार के बंधन से छूट जाते हैं, उन्हीं राम को एक तुच्छ राक्षस ने नागपाश से बाँध लिया॥58॥

चौपाई :

*** नाना भाँति मनहिं समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा॥ खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहिं नाई॥1॥

भावार्थ:-

गरुड़जी ने अनेकों प्रकार से अपने मन को समझाया। पर उन्हें ज्ञान नहीं हुआ, हृदय में भ्रम और

भी अधिक छा गया। (संदेहजनित) दुःख से दुःखी होकर, मन में कुतर्क बढ़ाकर वे तुम्हारी ही भाँति मोहवश हो गए॥1॥

*** ब्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं॥ सुनि नारदहि लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया॥2॥

भावार्थ:-

व्याकुल होकर वे देवर्षि नारदजी के पास गए और मन में जो संदेह था, वह उनसे कहा। उसे सुनकर नारद को अत्यंत दया आई। (उन्होंने कहा-) हे गरुड़! सुनिए! श्री रामजी की माया बड़ी ही बलवती है॥2॥

*** जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई॥ जेहिं बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही॥3॥

भावार्थ:-

जो ज्ञानियों के चित्त को भी भली भाँति हरण कर लेती है और उनके मन में जबर्दस्ती बड़ा भारी मोह उत्पन्न कर देती है तथा जिसने मुझको भी बहुत बार नचाया है हे पक्षीराज! वही माया आपको भी व्याप गई है॥3॥

*** महामोह उपजा उर तोरें। मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें॥ चतुरानन पहिं जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होई निदेसा॥4॥

भावार्थ:-

हे गरुड़! आपके हृदय में बड़ा भारी मोह उत्पन्न हो गया है। यह मेरे समझाने से तुरंत नहीं मिटेगा। अतः हे पक्षीराज! आप ब्रह्माजी के पास जाइए और वहाँ जिस काम के लिए आदेश मिले, वही कीजिएगा॥4॥

दोहा :

*** अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान। हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान॥59॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर परम सुजान देवर्षि नारदजी श्री रामजी का गुणगान करते हुए और बारंबार श्री हरि की माया का बल वर्णन करते हुए चले॥59॥

चौपाई :

*** तब खगपति बिरंचि पहिं गयऊ। निज संदेह सुनावत भयऊ॥ सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा॥1॥

भावार्थ:-

तब पक्षीराज गरुड़ ब्रह्माजी के पास गए और अपना संदेह उन्हें कह सुनाया। उसे सुनकर ब्रह्माजी ने श्री रामचंद्रजी को सिर नवाया और उनके प्रताप को समझकर उनके मन में अत्यंत

प्रेम छा गया॥1॥

*** हरि माया कर अमिति प्रभावा। बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा॥2॥

भावार्थ:-

ब्रह्माजी मन में विचार करने लगे कि कवि, कोविद और ज्ञानी सभी माया के वश हैं। भगवान् की माया का प्रभाव असीम है, जिसने मुझ तक को अनेकों बार नचाया है॥2॥

*** अग जगमय जग मम उपराजा। नहिं आचरज मोह खगराजा॥ तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस राम प्रभुताई॥3॥

भावार्थ:-

यह सारा चराचर जगत् तो मेरा रचा हुआ है। जब मैं ही मायावश नाचने लगता हूँ तब गरुड़ को मोह होना कोई आश्चर्य (की बात) नहीं है। तदनन्तर ब्रह्माजी सुंदर वाणी बोले- श्री रामजी की महिमा को महादेवजी जानते हैं॥3॥

*** बैनतेय संकर पहिं जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू॥ तहँ होइहि तव संसय हानी। चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी॥4॥

भावार्थ:-

हे गरुड़! तुम शंकरजी के पास जाओ। हे तात! और कहीं किसी से न पूछना। तुम्हारे संदेह का नाश वहीं होगा। ब्रह्माजी का वचन सुनते ही गरुड़ चल दिए॥4॥

दोहा :

*** परमातुर बिहंगपति आयउ तब मो पास। जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास॥60॥

भावार्थ:-

तब बड़ी आतुरता (उतावली) से पक्षीराज गरुड़ मेरे पास आए। हे उमा! उस समय मैं कुबेर के घर जा रहा था और तुम कैलास पर थीं॥60॥

चौपाई :

*** तेहिं मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा॥ सुनि ता करि बिनती मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी॥1॥

भावार्थ:-

गरुड़ ने आदरपूर्वक मेरे चरणों में सिर नवाया और फिर मुझको अपना संदेह सुनाया। हे भवानी! उनकी विनती और कोमल वाणी सुनकर मैंने प्रेमसहित उनसे कहा-॥1॥

*** मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावौं तोही॥ तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥2॥

भावार्थ:-

हे गरुड़! तुम मुझे रास्ते में मिले हो। राह चलते मैं तुम्हे किस प्रकार समझाऊँ? सब संदेहों का तो तभी नाश हो जब दीर्घ काल तक सत्संग किया जाए॥2॥

*** सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई॥ जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥3॥

भावार्थ:-

और वहाँ (सत्संग में) सुंदर हरिकथा सुनी जाए जिसे मुनियों ने अनेकों प्रकार से गाया है और जिसके आदि, मध्य और अंत में भगवान् श्री रामचंद्रजी ही प्रतिपाद्य प्रभु हैं॥3॥

*** नित हरि कथा होत जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई॥ जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहि अति नेहा॥4॥

भावार्थ:-

हे भाई! जहाँ प्रतिदिन हरिकथा होती है, तुमको मैं वहीं भेजता हूँ तुम जाकर उसे सुनो। उसे सुनते ही तुम्हारा सब संदेह दूर हो जाएगा और तुम्हें श्री रामजी के चरणों में अत्यंत प्रेम होगा॥4॥

दोहा :

*** बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥61॥

भावार्थ:-

सत्संग के बिना हरि की कथा सुनने को नहीं मिलती, उसके बिना मोह नहीं भागता और मोह के गए बिना श्री रामचंद्रजी के चरणों में दृढ़ (अचल) प्रेम नहीं होता॥61॥

चौपाई :

*** मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा॥ उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह काकभुसुण्डि सुसीला॥1॥

भावार्थ:-

बिना प्रेम के केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्यादि के करने से श्री रघुनाथजी नहीं मिलते। (अतएव तुम सत्संग के लिए वहाँ जाओ जहाँ) उत्तर दिशा में एक सुंदर नील पर्वत है। वहाँ परम सुशील काकभुशुण्डिजी रहते हैं॥1॥

***राम भगति पथ परम प्रबीना। ग्यानी गुन गृह बहु कालीना॥ राम कथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहंगबर॥2॥

भावार्थ:-

वे रामभक्ति के मार्ग में परम प्रवीण हैं, ज्ञानी हैं, गुणों के धाम हैं और बहुत काल के हैं। वे निरंतर श्री रामचंद्रजी की कथा कहते रहते हैं, जिसे भाँति-भाँति के श्रेष्ठ पक्षी आदर सहित सुनते हैं॥2॥

*** जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी॥ मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई॥3॥

भावार्थ:-

वहाँ जाकर श्री हरि के गुण समूहों को सुनो। उनके सुनने से मोह से उत्पन्न तुम्हारा दुःख दूर हो जाएगा। मैंने उसे जब सब समझाकर कहा, तब वह मेरे चरणों में सिर नवाकर हर्षित होकर चला गया॥3॥

*** ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा॥ होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥4॥

भावार्थ:-

हे उमा! मैंने उसको इसीलिए नहीं समझाया कि मैं श्री रघुनाथजी की कृपा से उसका मर्म (भेद) पा गया था। उसने कभी अभिमान किया होगा, जिसको कृपानिधान श्री रामजी नष्ट करना चाहते हैं॥4॥

*** कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खगही कै भाषा॥ प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी॥5॥

भावार्थ:-

फिर कुछ इस कारण भी मैंने उसको अपने पास नहीं रखा कि पक्षी पक्षी की ही बोली समझते हैं। हे भवानी! प्रभु की माया (बड़ी ही) बलवती है, ऐसा कौन ज्ञानी है, जिसे वह न मोह ले?॥5॥

दोहा :

*** ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान। ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान॥62 क॥

भावार्थ:-

जो ज्ञानियों में और भक्तों में शिरोमणि हैं एवं त्रिभुवनपति भगवान् के वाहन हैं, उन गरुड़ को भी माया ने मोह लिया। फिर भी नीच मनुष्य मूर्खतावश घमंड किया करते हैं॥62 (क)॥

*** सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन। अस जियँ जानि भजहिं मुनि माया पति भगवान॥62 ख॥

भावार्थ:-

यह माया जब शिवजी और ब्रह्माजी को भी मोह लेती है, तब दूसरा बेचारा क्या चीज है? जी में ऐसा जानकर ही मुनि लोग उस माया के स्वामी भगवान् का भजन करते हैं॥62 (ख)॥

चौपाई :

*** गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुण्डा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा॥ देखि सैल प्रसन्न मन भयउ। माया मोह सोच सब गयऊ॥1॥

भावार्थ:-

गरुड़जी वहाँ गए जहाँ निर्बाध बुद्धि और पूर्ण भक्ति वाले काकभुशुण्डि बसते थे। उस पर्वत को देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया और (उसके दर्शन से ही) सब माया, मोह तथा सोच जाता रहा॥1॥

*** करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदयँ हरषाना॥ बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए॥2॥

भावार्थ:-

तालाब में स्नान और जलपान करके वे प्रसन्नचित्त से वटवृक्ष के नीचे गए। वहाँ श्री रामजी के सुंदर चरित्र सुनने के लिए बूढ़ेबूढ़े पक्षी आए हुए थे॥2॥

***कथा अरंभ करै सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा॥ आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा॥3॥

भावार्थ:-

भुशुण्डिजी कथा आरंभ करना ही चाहते थे कि उसी समय पक्षीराज गरुड़जी वहाँ जा पहुँचे। पक्षियों के राजा गरुड़जी को आते देखकर काकभुशुण्डिजी सहित सारा पक्षी समाज हर्षित हुआ॥3॥

*** अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा॥ करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा॥4॥

भावार्थ:-

उन्होंने पक्षीराज गरुड़जी का बहुत ही आदर-सत्कार किया और स्वागत (कुशल) पूछकर बैठने के लिए सुंदर आसन दिया। फिर प्रेम सहित पूजा कर के कागभुशुण्डिजी मधुर वचन बोले॥4॥

दोहा :

*** नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज। आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज॥63 क॥

भावार्थ:-

हे नाथ ! हे पक्षीराज ! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। आप जो आज्ञा दें मैं अब वही करूँ। हे प्रभो ! आप किस कार्य के लिए आए हैं ?॥63 (क)॥

*** सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।॥ जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्ह महेस॥63 ख॥

भावार्थ:-

पक्षीराज गरुड़जी ने कोमल वचन कहे- आप तो सदा ही कृतार्थ रूप हैं, जिनकी बड़ाई स्वयं महादेवजी ने आदरपूर्वक अपने श्रीमुख से की है॥63 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तव पायउँ॥ देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥1॥

भावार्थ:-

हे तात! सुनिए, मैं जिस कारण से आया था, वह सब कार्य तो यहाँ आते ही पूरा हो गया। फिर

आपके दर्शन भी प्राप्त हो गए। आपका परम पवित्र आश्रम देखकर ही मेरा मोह संदेह और अनेक प्रकार के भ्रम सब जाते रहे॥1॥

*** अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुख पुंज नसावनि॥ सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवउँ प्रभु तोही॥2॥

भावार्थ:-

अब हे तात! आप मुझे श्री रामजी की अत्यंत पवित्र करने वाली, सदा सुख देने वाली और दुःख समूह का नाश करने वाली कथा सादर सहित सुनाएँ। हे प्रभो! मैं बार-बार आप से यही विनती करता हूँ॥2॥

*** सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता॥ भयउ तास मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा॥3॥

भावार्थ:-

गरुड़जी की विनम्र, सरल, सुंदर प्रेमयुक्त, सुप्रद और अत्यंत पवित्र वाणी सुनते ही भुशण्डिजी के मन में परम उत्साह हुआ और वे श्री रघुनाथजी के गुणों की कथा कहने लगे॥3॥

*** प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी॥ पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा॥4॥

भावार्थ:-

हे भवानी! पहले तो उन्होंने बड़े ही प्रेम से रामचरित मानस सरोवर का रूपक समझाकर कहा। फिर नारदजी का अपार मोह और फिर रावण का अवतार कहा॥4॥

*** प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई॥5॥

भावार्थ:-

फिर प्रभु के अवतार की कथा वर्णन की। तदनन्तर मन लगाकर श्री रामजी की बाल लीलाएँ कहीं॥5॥

दोहा :

*** बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महँ परम उछाह। रिषि आगवन कहेसि पुनि श्रीरघुबीर बिबाह॥64॥

भावार्थ:-

मन में परम उत्साह भरकर अनेकों प्रकार की बाल लीलाएँ कहकर, फिर ऋषि विश्वामित्रजी का अयोध्या आना और श्री रघुवीरजी का विवाह वर्णन किया॥64॥

चौपाई :

*** बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा॥ पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा॥1॥

भावार्थ:-

फिर श्री रामजी के राज्याभिषेक का प्रसंग फिर राजा दशरथजी के वचन से राजरस (राज्याभिषेक के आनंद) में भंग पड़ना, फिर नगर निवासियों का विरह, विषाद और श्री राम-लक्ष्मण का संवाद (बातचीत) कहा॥1॥

*** बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥ बालमीक प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना॥2॥

भावार्थ:-

श्री राम का वनगमन, केवट का प्रेम, गंगाजी से पार उतरकर प्रयाग में निवास, वाल्मीकिजी और प्रभु श्री रामजी का मिलन और जैसे भगवान् चित्रकूट में बसे, वह सब कहा॥2॥

*** सचिवागवन नगर नृप मरना। भरतागवन प्रेम बहु बरना॥ करि नृप क्रिया संग पुरबासी। भरत गए जहाँ प्रभु सुख रासी॥3॥

भावार्थ:-

फिर मंत्री सुमंत्रजी का नगर में लौटना, राजा दशरथजी का मरण, भरतजी का (ननिहाल से) अयोध्या में आना और उनके प्रेम का बहुत वर्णन किया। राजा की अन्त्येष्टि क्रिया करके नगर निवासियों को साथ लेकर भरतजी वहाँ गए जहाँ सुख की राशि प्रभु श्री रामचंद्रजी थे॥3॥

*** पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए॥ भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी॥4॥

भावार्थ:-

फिर श्री रघुनाथजी ने उनको बहुत प्रकार से समझाया, जिससे वे खड़ाऊँ लेकर अयोध्यापुरी लौट आए, यह सब कथा कही। भरतजी की नन्दीग्राम में रहने की रीति, इंद्रपुत्र जयंत की नीच करनी और फिर प्रभु श्री रामचंद्रजी और अत्रिजी का मिलाप वर्णन किया॥4॥

दोहा :

*** कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग। बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभ अगस्ति सतसंग॥65॥

भावार्थ:-

जिस प्रकार विराध का वध हुआ और शरभंगजी ने शरीर त्याग किया, वह प्रसंग कहकर, फिर सुतीक्ष्णजी का प्रेम वर्णन करके प्रभु और अगस्त्यजी का सत्संग वृत्तान्त कहा॥65॥

चौपाई :

*** कहि दंडक बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहिं गाई॥ पुनि प्रभु पंचबटीं कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा॥1॥

भावार्थ:-

दंडकवन का पवित्र करना कहकर फिर भुशुण्डिजी ने गृध्रराज के साथ मित्रता का वर्णन किया। फिर जिस प्रकार प्रभु ने पंचवटी में निवास किया और सब मुनियों के भय का नाश किया,॥1॥

*** पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा॥ खर दूषन बध बहु रि बखाना। जिमि सब मरमु दसानन जाना॥2॥

भावार्थ:-

और फिर जैसे लक्ष्मणजी को अनुपम उपदेश दिया और शूर्पणखा को कुरूप किया, वह सब वर्णन किया। फिर खर-दूषण वध और जिस प्रकार रावण ने सब समाचार जाना, वह बखानकर कहा,॥2॥

*** दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहिं कही॥ पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना॥3॥

भावार्थ:-

तथा जिस प्रकार रावण और मारीच की बातचीत हु ई, वह सब उन्होंने कही। फिर माया सीता का हरण और श्री रघुवीर के विरह का कुछ वर्णन किया॥3॥

*** पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्हीं। बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही॥ बहु रि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर तीरा॥4॥

भावार्थ:-

फिर प्रभु ने गिद्ध जटायु की जिस प्रकार क्रिया की, कबन्ध का वध करके शबरी को परमगति दी और फिर जिस प्रकार विरह वर्णन करते हु ए श्री रघुवीरजी पंपासर के तीर पर गए, वह सब कहा॥4॥

दोहा :

*** प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग। पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग॥66 क॥

भावार्थ:-

प्रभु और नारदजी का संवाद और मारुति के मिलने का प्रसंग कहकर फिर सुग्रीव से मित्रता और बालि के प्राणनाश का वर्णन किया॥66 (क)॥

*** कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास। बरनन बर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास॥66 ख॥

भावार्थ:-

सुग्रीव का राजतिलक करके प्रभु ने प्रवर्षण पर्वत पर निवास किया, वह तथा वर्षा और शरद् का वर्णन, श्री रामजी का सुग्रीव पर रोष और सुग्रीव का भय आदि प्रसंग कहे॥66 (ख)॥

चौपाई :

*** जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिदि धाए॥ बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँति। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती॥1॥

भावार्थ:-

जिस प्रकार वानरराज सुग्रीव ने वानरों को भेजा और वे सीताजी की खोज में जिस प्रकार सब

दिशाओं में गए, जिस प्रकार उन्होंने बिल में प्रवेश किया और फिर जैसे वानरों को सम्पाती मिला, वह कथा कही॥1॥

*** सुनि सब कथा समीरकुमारा। नाघत भयउ पयोधि अपारा॥ लंकाँ कपि प्रबेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा॥2॥

भावार्थ:-

सम्पाती से सब कथा सुनकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी जिस तरह अपार समुद्र को लाँघ गए, फिर हनुमान्‌जी ने जैसे लंका में प्रवेश किया और फिर जैसे सीताजी को धीरज दिया, सो सब कहा॥2॥

*** बन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी॥ आए कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई॥3॥

भावार्थ:-

अशोक वन को उजाड़कर, रावण को समझाकर, लंकापुरी को जलाकर फिर जैसे उन्होंने समुद्र को लाँघा और जिस प्रकार सब वानर वहाँ आए जहाँ श्री रघुनाथजी थे और आकर श्री जानकीजी की कुशल सुनाई,॥3॥

*** सेन समेति जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि तीरा॥ मिला बिभीषन जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई॥4॥

भावार्थ:-

फिर जिस प्रकार सेना सहित श्री रघुवीर जाकर समुद्र के तट पर उतरे और जिस प्रकार विभीषणजी आकर उनसे मिले, वह सब और समुद्र के बाँधने की कथा उसने सुनाई॥4॥

दोहा :

*** सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार। गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार॥67 क॥

भावार्थ:-

पुल बाँधकर जिस प्रकार वानरों की सेना समुद्र के पार उतरी और जिस प्रकार वीर श्रेष्ठ बालिपुत्र अंगद दूत बनकर गए वह सब कहा॥67 (क)॥

*** निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार। कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार॥67 ख॥

भावार्थ:-

फिर राक्षसों और वानरों के युद्ध का अनेकों प्रकार से वर्णन किया। फिर कुंभकर्ण और मेघनाद के बल, पुरुषार्थ और संहार की कथा कही॥67 (ख)॥

चौपाई :

*** निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना॥ रावन बध मंदोदरि सोका। राज बिभीषन देव असोका॥1॥

भावार्थ:-

नाना प्रकार के राक्षस समूहों के मरण तथा श्री रघुनाथजी और रावण के अनेक प्रकार के युद्ध का वर्णन किया। रावण वध, मंदोदरी का शोक, विभीषण का राज्याभिषेक और देवताओं का शोकरहित होना कहकर,॥1॥

*** सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी॥ पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता॥2॥

भावार्थ:-

फिर सीताजी और श्री रघुनाथजी का मिलाप कहा। जिस प्रकार देवताओं ने हाथ जोड़कर स्तुति की और फिर जैसे वानरों समेत पुष्पक विमान पर चढ़कर कृपाधाम प्रभु अवधपुरी को चले, वह कहा॥2॥

*** जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए॥ कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृपनीति अनेका॥3॥

भावार्थ:-

जिस प्रकार श्री रामचंद्रजी अपने नगर (अयोध्या) में आए, वे सब उज्ज्वल चरित्र काकभुशुण्डिजी ने विस्तारपूर्वक वर्णन किए। फिर उन्होंने श्री रामजी का राज्याभिषेक कहा। (शिवजी कहते हैं-) अयोध्यापुरी का और अनेक प्रकार की राजनीति का वर्णन करते हुए॥3॥

*** कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी॥ सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥4॥

भावार्थ:-

भुशुण्डिजी ने वह सब कथा कही जो हे भवानी! मैंने तुमसे कही। सारी रामकथा सुनकर गरुड़जी मन में बहुत उत्साहित (आनंदित) होकर वचन कहने लगे-॥4॥

सोरठा :

*** गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित। भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥68 क॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी के सब चरित्र मैंने सुने, जिससे मेरा संदेह जाता रहा। हे काकशिरोमणि! आपके अनुग्रह से श्री रामजी के चरणों में मेरा प्रेम हो गया॥68 (क)॥

***मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि। चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥68 ख॥

भावार्थ:-

युद्ध में प्रभु का नागपाश से बंधन देखकर मुझे अत्यंत मोह हो गया था कि श्री रामजी तो सच्चिदानंदघन हैं, वे किस कारण व्याकुल हैं॥68 (ख)॥

चौपाई :

*** देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदयँ मम संसय भारी॥ सोई भ्रम अब हित करि मैं माना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना॥1॥

भावार्थ:-

बिलकुल ही लौकिक मनुष्यों का सा चरित्र देखकर मेरे हृदय में भारी संदेह हो गया। मैं अब उस भ्रम (संदेह) को अपने लिए हित करके समझता हूँ। कृपानिधान ने मुझ पर यह बड़ा अनुग्रह किया॥1॥

*** जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई॥ जौं नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही॥2॥

भावार्थ:-

जो धूप से अत्यंत व्याकुल होता है, वही वृक्ष की छाया का सुख जानता है। हे तात! यदि मुझे अत्यंत मोह न होता तो मैं आपसे किस प्रकार मिलता?॥2॥

*** सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई। अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई॥ निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा॥3॥

भावार्थ:-

और कैसे अत्यंत विचित्र यह सुंदर हरिकथा सुनता, जो आपने बहुत प्रकार से गाई है? वेद, शास्त्र और पुराणों का यही मत है, सिद्ध और मुनि भी यही कहते हैं, इसमें संदेह नहीं कि-॥3॥

*** संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥ राम कपाँ तव दरसन भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥4॥

भावार्थ:-

शुद्ध (सच्चे) संत उसी को मिलते हैं, जिसे श्री रामजी कृपा करके देखते हैं। श्री रामजी की कृपा से मुझे आपके दर्शन हुए और आपकी कृपा से मेरा संदेह चला गया॥4॥

दोहा :

***सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग। पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग॥69 क॥

भावार्थ:-

पक्षीराज गरुड़जी की विनय और प्रेमयुक्त वाणी सुनकर काकभुशुण्डिजी का शरीर पुलकित हो गया, उनके नेत्रों में जल भर आया और वे मन में अत्यंत हर्षित हुए॥69 (क)॥

*** श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास। पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥69 ख॥

भावार्थ:-

हे उमा! सुंदर बुद्धि वाले सुशील पवित्र कथा के प्रेमी और हरि के सेवक श्रोता को पाकर सज्जन अत्यंत गोपनीय (सबके सामने प्रकट न करने योग्य) रहस्य को भी प्रकट कर देते हैं॥69 (ख)॥

चौपाई :

*** बोलेउ काकभुसुंड बहोरी। नभग नाथ पर प्रीति न थोरी॥ सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे। कृपापात्र रघुनायक केरे॥1॥

भावार्थ:-

काकभुशुण्डिजी ने फिर कहा- पक्षीराज पर उनका प्रेम कम न था (अर्थात् बहुत था)- हे नाथ! आप सब प्रकार से मेरे पूज्य हैं और श्री रघुनाथजी के कृपापात्र हैं॥1॥

*** तुम्हहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया॥ पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही॥2॥

भावार्थ:-

आपको न संदेह है और न मोह अथवा माया ही है। हे नाथ! आपने तो मुझ पर दया की है। हे पक्षीराज! मोह के बहाने श्री रघुनाथजी ने आपको यहाँ भेजकर मुझे बड़ाई दी है॥2॥

*** तुम्ह निज मोह कही खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं॥ नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमबादी॥3॥

भावार्थ:-

हे पक्षियों के स्वामी! आपने अपना मोह कहा, सो हे गोसाईं! यह कुछ आश्चर्य नहीं है। नारदजी, शिवजी, ब्रह्माजी और सनकादि जो आत्मतत्त्व के मर्मज्ञ और उसका उपदेश करने वाले श्रेष्ठ मुनि हैं॥3॥

*** मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव नजेही॥ तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा॥4॥

भावार्थ:-

उनमें से भी किस-किस को मोह ने अंधा (विवेकशून्य) नहीं किया? जगत् में ऐसा कौन है जिसे काम ने न नचाया हो? तृष्णा ने किसको मतवाला नहीं बनाया? क्रोध ने किसका हृदय नहीं जलाया?॥4॥

दोहा :

***ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार। केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार॥ 70 क॥

भावार्थ:-

इस संसार में ऐसा कौन ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, विद्वान और गुणों का धाम है, जिसकी लोभ ने विडंबना (मिट्टी पलीद) न की हो॥ 70 (क)॥

*** श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि। मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि॥ 70 ख॥

भावार्थ:-

लक्ष्मी के मद ने किसको टेढ़ा और प्रभुता ने किसको बहरा नहीं कर दिया? ऐसा कौन है जिसे मृगनयनी (युवती स्त्री) के नेत्र बाण न लगे हों॥ 70 (ख)॥

चौपाई :

*** गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही॥ जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा॥1॥

भावार्थ:-

(रज, तम आदि) गुणों का किया हुआ सन्निपात किसे नहीं हुआ? ऐसा कोई नहीं है जिसे मान और मद ने अछूता छोड़ा हो। यौवन के ज्वर ने किसे आपे से बाहर नहीं किया? ममता ने किस के यश का नाश नहीं किया?॥1॥

*** मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥ चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥2॥

भावार्थ:-

मत्सर (डाह) ने किसको कलंक नहीं लगाया? शोक रूपी पवन ने किसे नहीं हिला दिया? चिंता रूपी साँपिन ने किसे नहीं खा लिया? जगत में ऐसा कौन है, जिसे माया न व्यापी हो?॥2॥

*** कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा॥ सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥3॥

भावार्थ:-

मनोरथ क्रीड़ा है, शरीर लकड़ी है। ऐसा धैर्यवान् कौन है, जिसके शरीर में यह कीड़ा न लगा हो? पुत्र की, धन की और लोक प्रतिष्ठा की, इन तीन प्रबल इच्छाओं ने किसकी बुद्धि को मलिन नहीं कर दिया (बिगाड़ नहीं दिया)?॥3॥

*** यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा॥ सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥3॥

भावार्थ:-

मनोरथ क्रीड़ा है, शरीर लकड़ी है। ऐसा धैर्यवान् कौन है, जिसके शरीर में यह कीड़ा न लगा हो? पुत्र की, धन की और लोक प्रतिष्ठा की, इन तीन प्रबल इच्छाओं ने किसकी बुद्धि को मलिन नहीं कर दिया (बिगाड़ नहीं दिया)?॥3॥

दोहा :

*** ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड। सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड॥ 71 क॥

भावार्थ:-

माया की प्रचंड सेना संसार भर में छाई हुई है। कामादि (काम, क्रोध और लोभ) उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट और पाखंड योद्धा हैं॥ 71 (क)॥

*** सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि। छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि॥ 71

ख॥

भावार्थ:-

वह माया श्री रघुवीर की दासी है। यद्यपि समझ लेने पर वह मिथ्या ही है, किंतु वह श्री रामजी की कृपा के बिना छूटती नहीं। हे नाथ! यह मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ॥ 71 (ख)॥

चौपाई :

*** जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा॥ सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥1॥

भावार्थ:-

जो माया सारे जगत् को नचाती है और जिसका चरित्र (करनी) किसी ने नहीं लख पाया, हे खगराज गरुड़जी! वही माया प्रभु श्री रामचंद्रजी की भृकुटी के इशारे पर अपने समाज (परिवार) सहित नटी की तरह नाचती है॥1॥

*** सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा॥ ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अकिल अमोघसक्ति भगवंता॥2॥

भावार्थ:-

श्री रामजी वही सच्चिदानंदघन हैं जो अजन्मे, विज्ञानस्वरूप, रूप और बल के धाम, सर्वव्यापक एवं व्याप्य (सर्वरूप), अखंड, अनंत, संपूर्ण, अमोघशक्ति (जिसकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती) और छह ऐश्वर्यों से युक्त भगवान् हैं॥2॥

*** अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥ निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥3॥

भावार्थ:-

वे निर्गुण (माया के गुणों से रहित), महान्, वाणी और इंद्रियों से परे, सब कुछ देखने वाले, निर्दोष, अजेय, ममतारहित, निराकार (मायिक आकार से रहित), मोहरहित, नित्य, मायारहित, सुख की राशि,॥3॥

*** प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥ इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं॥4॥

भावार्थ:-

प्रकृति से परे, प्रभु (सर्वसमर्थ), सदा सबके हृदय में बसने वाले, इच्छारहित विकाररहित, अविनाशी ब्रह्म हैं। यहाँ (श्री राम में) मोह का कारण ही नहीं है। क्या अंधकार का समूह कभी सूर्य के सामने जा सकता है?॥4॥

दोहा :

*** भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप। किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥72 क॥

भावार्थ:-

भगवान् प्रभु श्री रामचंद्रजी ने भक्तों के लिए राजा का शरीर धराण किया और साधारण मनुष्यों के से अनेकों परम पावन चरित्र किए॥ 72 (क)॥

*** जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ। सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥ 72 ख॥

भावार्थ:-

जैसे कोई नट (खेल करने वाला) अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है और वही-वही (जैसा वेष होता है, उसी के अनुकूल) भाव दिखलाता है, पर स्वयं वह उनमें से कोई हो नहीं जाता,॥ 72 (ख)॥

चौपाई :

*** असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥ जे मति मलिन बिषय बस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी॥1॥

भावार्थ:-

हे गरुड़जी! ऐसी ही श्री रघुनाथजी की यह लीला है, जो राक्षसों को विशेष मोहित करने वाली और भक्तों को सुख देने वाली है। हे स्वामी! जो मनुष्य मलिन बुद्धि, विषयों के वश और कामी हैं, वे ही प्रभु पर इस प्रकार मोह का आरोप करते हैं॥1॥

*** नयन दोष जा कहँ जब होई। पीत बरन ससि कहुँ कह सोई॥ जब जेहि दिसि भ्रम होई खगेसा। सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा॥2॥

भावार्थ:-

जब जिसको (कवँल आदि) नेत्र दोष होता है, तब वह चंद्रमा को पीले रंग का कहता है। हे पक्षीराज! जब जिसे दिशाभ्रम होता है, तब वह कहता है कि सूर्य पश्चिम में उदय हुआ है॥2॥

*** नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा॥ बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्याबादी॥3॥

भावार्थ:-

नौका पर चढ़ा हुआ मनुष्य जगत को चलता हुआ देखता है और मोहवश अपने को अचल समझता है। बालक घूमते (चक्राकार दौड़ते) हैं, घर आदि नहीं घूमते। पर वे आपस में एक-दूसरे को झूठा कहते हैं॥3॥

*** हरि बिषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा॥ माया बस मतिमंद अभागी। हृदयँ जमनिका बहु बिधि लागी॥4॥

भावार्थ:-

हे गरुड़जी! श्री हरि के विषय में मोह की कल्पना भी ऐसी ही है, भगवान् में तो स्वप्न में भी अज्ञान का प्रसंग (अवसर) नहीं है, किंतु जो माया के वश, मंदबुद्धि और भाग्यहीन हैं और जिनके

हृदय पर अनेकों प्रकार के परदे पड़े हैं॥4॥

*** ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥5॥

भावार्थ:-

वे मूर्ख हठ के वश होकर संदेह करते हैं और अपना अज्ञान श्री रामजी पर आरोपित करते हैं॥5॥

दोहा :

*** काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप। ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥ 73 क॥

भावार्थ:-

जो काम, क्रोध, मद और लोभ में रत हैं और दुःख रूप घर में आसक्त हैं, वे श्री रघुनाथजी को कैसे जान सकते हैं? वे मूर्ख तो अंधकार रूपी कुएँ में पड़े हुए हैं॥ 73 (क)॥

*** निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोई। सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होई॥ 73 ख॥

भावार्थ:-

निर्गुण रूप अत्यंत सुलभ (सहज ही समझ में आ जाने वाला) है, परंतु (गुणातीत दिव्य) सगुण रूप को कोई नहीं जानता, इसलिए उन सगुण भगवान् के अनेक प्रकार के सुगम और अगम चरित्रों को सुनकर मुनियों के भी मन को भ्रम हो जाता है॥ 73 (ख)॥

काकभुशुण्डि का अपनी पूर्व जन्म कथा और कलि महिमा कहना

चौपाई :

*** सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई।। जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सोउ सब कथा सुनावउँ तोही॥1॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज गरुड़जी! श्री रघुनाथजी की प्रभुता सुनिए। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वह सुहावनी कथा कहता हूँ। हे प्रभो! मुझे जिस प्रकार मोह हुआ, वह सब कथा भी आपको सुनाता हूँ॥1॥

*** राम कृपा भाजन तुम्ह ताता। हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता॥ ताते नहिं कछु तुम्हहि दुरावउँ। परम रहस्य मनोहर गावउँ॥2॥

भावार्थ:-

हे तात! आप श्री रामजी के कृपा पात्र हैं। श्री हरि के गुणों में आपकी प्रीति है, इसीलिए आप मुझे सुख देने वाले हैं। इसी से मैं आप से कुछ भी नहीं छिपाता और अत्यंत रहस्य की बातें आपको गाकर सुनाता हूँ॥2॥

***सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥ संसृत मूलसूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥3॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी का सहज स्वभाव सुनिए। वे भक्त में अभिमान कभी नहीं रहने देते, क्योंकि अभिमान जन्म-मरण रूप संसार का मूल है और अनेक प्रकार के क्लेशों तथा समस्त शोकों का देने वाला है॥3॥

*** ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥ जिमि सिसु तन ब्रन होई गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥4॥

भावार्थ:-

इसीलिए कृपानिधि उसे दूर कर देते हैं, क्योंकि सेवक पर उनकी बहुत ही अधिक ममता है। हे गोसाईं! जैसे बच्चे के शरीर में फोड़ा हो जाता है, तो माता उसे कठोर हृदय की भाँति चिरा डालती है॥4॥

दोहा :

*** जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर। ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर॥ 74 क॥

भावार्थ:-

यद्यपि बच्चा पहले (फोड़ा चिराते समय) दुःख पाता है और अधीर होकर रोता है, तो भी रोग के नाश के लिए माता बच्चे की उस पीड़ा को कुछ भी नहीं गिनती (उसकी परवाह नहीं करती और फोड़े को चिरवा ही डालती है)॥ 74 (क)॥

***तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि। तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि॥ 74 ख॥

भावार्थ:-

उसी प्रकार श्री रघुनाथजी अपने दास का अभिमान उसके हित के लिए हर लेते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे प्रभु को भ्रम त्यागकर क्यों नहीं भजते॥ 74 (ख)॥

चौपाई :

*** राम कृपा आपनि जड़ताई। कहउँ खगेस सुनहु मन लाई॥ जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥1॥

भावार्थ:-

हे हे गरुड़जी! श्री रामजी की कृपा और अपनी जड़ता (मूर्खता) की बात कहता हूँ, मन लगाकर सुनिए। जब-जब श्री रामचंद्रजी मनुष्य शरीर धारण करते हैं और भक्तों के लिए बहुत सी लीलाएँ करते हैं॥1॥

*** तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥ जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष

पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥2॥

भावार्थ:-

तब-तब मैं अयोध्यापुरी जाता हूँ और उनकी बाल लीला देखकर हर्षित होता हूँ। वहाँ जाकर मैं जन्म महोत्सव देखता हूँ और (भगवान् की शिशु लीला में) लुभाकर पाँच वर्ष तक वहीं रहता हूँ॥2॥

*** इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटि सत कामा॥ निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी॥3॥

भावार्थ:-

बालक रूप श्री रामचंद्रजी मेरे इष्टदेव हैं, जिनके शरीर में अरबों कामदेवों की शोभा है। हे गरुड़जी! अपने प्रभु का मुख देख-देखकर मैं नेत्रों को सफल करता हूँ॥3॥

*** लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउँ बालचरित बहु रंगा॥4॥

भावार्थ:-

छोटे से कौए का शरीर धरकर और भगवान् के साथ-साथ फिरकर मैं उनके भाँति-भाँति के बाल चरित्रों को देखा करता हूँ॥4॥

दोहा :

*** लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ। जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाई करि खाउँ॥ 75 क॥

भावार्थ:-

लड़कपन में वे जहाँ-जहाँ फिरते हैं, वहाँ-वहाँ मैं साथ-साथ उड़ता हूँ और आँगन में उनकी जो जूठन पड़ती है, वही उठाकर खाता हूँ॥ 75 (क)॥

*** एक बार अतिसय सब चरित किए रघुबीर। सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर॥ 75 ख॥

भावार्थ:-

एक बार श्री रघुवीर ने सब चरित्र बहुत अधिकता से किए। प्रभु की उस लीला का स्मरण करते ही काकभुशुण्डिजी का शरीर (प्रेमानन्दवश) पुलकित हो गया॥ 75 (ख)॥

चौपाई :

*** कहइ भसुंड सुनहु खगनायक। राम चरित सेवक सुखदायक॥ नृप मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती॥1॥

भावार्थ:-

भुशुण्डिजी कहने लगे- हे पक्षीराज! सुनिए, श्री रामजी का चरित्र सेवकों को सुख देने वाला है। (अयोध्या का) राजमहल सब प्रकार से सुंदर है। सोने के महल में नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए हैं॥1॥

*** बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥ बाल बिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥2॥

भावार्थ:-

सुंदर आँगन का वर्णन नहीं किया जा सकता, जहाँ चारों भाई नित्य खेलते हैं। माता को सुख देने वाले बालविनोद करते हुए श्री रघुनाथजी आँगन में विचर रहे हैं॥2॥

*** मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥ नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥3॥

भावार्थ:-

मरकत मणि के समान हरिताभ श्याम और कोमल शरीर है। अंग-अंग में बहुत से कामदेवों की शोभा छाई हुई है। नवीन (लाल) कमल के समान लाल-लाल कोमल चरण हैं। सुंदर अँगुलियाँ हैं और नख अपनी ज्योति से चंद्रमा की कांति को हरने वाले हैं॥3॥

*** ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥ चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥4॥

भावार्थ:-

(तलवे में) वज्रादि (वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल) के चार सुंदर चिह्न हैं, चरणों में मधुर शब्द करने वाले सुंदर नूपुर हैं मणियों, रत्नों से जड़ी हुई सोने की बनी हुई सुंदर करधनी का शब्द सुहावना लग रहा है॥4॥

दोहा :

*** रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गँभीर। उर आयत भ्राजत बिबिधि बाल बिभूषन चीर॥ 76॥

भावार्थ:-

उदर पर सुंदर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं, नाभि सुंदर और गहरी है। विशाल वक्षःस्थल पर अनेकों प्रकार के बच्चों के आभूषण और वस्त्र सुशोभित हैं॥ 76॥

चौपाई :

*** अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥ कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा॥1॥

भावार्थ:-

लाल-लाल हथेलियाँ, नख और अँगुलियाँ मन को हरने वाले हैं और विशाल भुजाओं पर सुंदर आभूषण हैं। बालसिंह (सिंह के बच्चे) के से कंधे और शंख के समान (तीन रेखाओं से युक्त) गला है। सुंदर ठुड्डी है और मुख तो छवि की सीमा ही है॥1॥

*** कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे॥ ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥2॥

भावार्थ:-

कलबल (तोतले) वचन हैं, लाल-लाल होठ हैं। उज्ज्वल, सुंदर और छोटी-छोटी (ऊपर और नीचे) दो-दो दंतुलियाँ हैं। सुंदर गाल, मनोहर नासिका और सब सुखों को देने वाली चंद्रमा की (अथवा सुख देने वाली समस्त कलाओं से पूर्ण चंद्रमा की) किरणों के समान मधुर मुस्कान है॥2॥

*** नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥ बिकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए॥3॥

भावार्थ:-

नीले कमल के समान नेत्र जन्म-मृत्यु (के बंधन) से छुड़ाने वाले हैं। ललाट पर गोरोचन का तिलक सुशोभित है। भौंहें टेढ़ी हैं, कान सम और सुंदर हैं, काले और घुँघराले केशों की छबि छा रही है॥3॥

*** पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही॥ रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥4॥

भावार्थ:-

पीली और महीन झँगुली शरीर पर शोभा दे रही है। उनकी किलकारी और चितवन मुझे बहुत ही प्रिय लगती है। राजा दशरथजी के आँगन में विहार करने वाले रूप की राशि श्री रामचंद्रजी अपनी परछाहीं देखकर नाचते हैं,॥4॥

*** मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा॥ किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप देखावहिं॥5॥

भावार्थ:-

और मुझसे बहुत प्रकार के खेल करते हैं जिन चरित्रों का वर्णन करते मुझे लज्जा आती है! किलकारी मारते हुए जब वे मुझे पकड़ने दौड़ते और मैं भाग चलता, तब मुझे पूआ दिखलाते थे॥5॥

दोहा :

*** आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं। जाऊँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं॥ 77 क॥

भावार्थ:-

मेरे निकट आने पर प्रभु हँसते हैं और भाग जाने पर रोते हैं और जब मैं उनका चरण स्पर्श करने के लिए पास जाता हूँ, तब वे पीछे फिर-फिरकर मेरी ओर देखते हुए भाग जाते हैं॥77 (क)॥

*** प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह। कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥ 77 ख॥

भावार्थ:-

साधारण बच्चों जैसी लीला देखकर मुझे मोह (शंका) हुआ कि सच्चिदानंदघन प्रभु यह कौन (महत्त्व का) चरित्र (लीला) कर रहे हैं॥ 77 (ख)॥

चौपाई :

*** एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥ सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाहीं॥1॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! मन में इतनी (शंका) लाते ही श्री रघुनाथजी के द्वारा प्रेरित माया मुझ पर छा गई, परंतु वह माया न तो मुझे दुःख देने वाली हुई और न दूसरे जीवों की भाँति संसार में डालने वाली हुई॥1॥

*** नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना॥ ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर॥2॥

भावार्थ:-

हे नाथ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है। हे भगवान् के वाहन गरुड़जी! उसे सावधान होकर सुनिए। एक सीतापति श्री रामजी ही अखंड मानवस्वरूप हैं और जड़-चेतन सभी जीव माया के वश हैं॥2॥

***जौं सब कें रह ज्ञान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस॥ माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी॥3॥

भावार्थ:-

यदि जीवों को एकरस (अखंड) ज्ञान रहे, तो कहिए, फिर ईश्वर और जीव में भेद ही कैसा? अभिमानी जीव माया के वश है और वह (सत्त्व, रज, तम इन) तीनों गुणों की खान माया ईश्वर के वश में है॥3॥

*** परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥ मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥4॥

भावार्थ:-

जीव परतंत्र है, भगवान् स्वतंत्र हैं, जीव अनेक हैं, श्री पति भगवान् एक हैं। यद्यपि माया का किया हुआ यह भेद असत् है तथापि वह भगवान् के भजन बिना करोड़ों उपाय करने पर भी नहीं जा सकता॥4॥

दोहा :

***रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान। ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥ 78 क॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के भजन बिना जो मोक्ष पद चाहता है, वह मनुष्य ज्ञानवान् होने पर भी बिना पूँछ और सींग का पशु है॥ 78 (क)॥

*** राकापति षोड़स उअहिं तारागन समुदाइ। सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ॥ 78 ख॥

भावार्थ:-

सभी तारागणों के साथ सोलह कलाओं से पूर्ण चंद्रमा उदय हो और जितने पर्वत हैं उन सब में दावाग्नि लगा दी जाए, तो भी सूर्य के उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती॥ 78 (ख)॥

चौपाई :

*** ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥ हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या॥1॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! इसी प्रकार श्री हरि के भजन बिना जीवों का क्लेश नहीं मिटता। श्री हरि के सेवक को अविद्या नहीं व्यापती। प्रभु की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है॥1॥

*** ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर॥ भ्रम तें चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिसेषा॥2॥

भावार्थ:-

हे पक्षीश्रेष्ठ! इससे दास का नाश नहीं होता और भेद भक्ति बढ़ती है। श्री रामजी ने मुझे जब भ्रम से चकित देखा, तब वे हँसे। वह विशेष चरित्र सुनिए॥2॥

*** तेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ। जाना अनुज न मातु पिताहूँ॥ जानु पानि धाए मोहि धरना। स्यामल गात अरुन कर चरना॥3॥

भावार्थ:-

उस खेल का मर्म किसी ने नहीं जाना, न छोटे भाइयों ने और न माता-पिता ने ही। वे श्याम शरीर और लाल-लाल हथेली और चरणतल वाले बाल रूप श्री रामजी घुटने और हाथों के बल मुझे पकड़ने को दौड़े॥3॥

*** तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी॥ जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा॥4॥

भावार्थ:-

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! तब मैं भाग चला। श्री रामजी ने मुझे पकड़ने के लिए भुजा फैलाई। मैं जैसे-जैसे आकाश में दूर उड़ता, वैसे-वैसे ही वहाँ श्री हरि की भुजा को अपने पास देखता था॥4॥

दोहा :

*** ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात। जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात॥ 79 क॥

भावार्थ:-

मैं ब्रह्मलोक तक गया और जब उड़ते हुए मैंने पीछे की ओर देखा, तो हे तात! श्री रामजी की भुजा में और मुझमें केवल दो ही अंगुल का बीच था॥ 79 (क)॥

*** सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि। गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि॥

79 ख॥

भावार्थ:-

सातों आवरणों को भेदकर जहाँ तक मेरी गति थी वहाँ तक मैं गया। पर वहाँ भी प्रभु की भुजा को (अपने पीछे) देखकर मैं व्याकुल हो गया॥ 79 (ख)॥

चौपाई :

*** मूदेउँ नयन त्रसित जब भयउँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥ मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥1॥

भावार्थ:-

जब मैं भयभीत हो गया, तब मैंने आँखें मूँद लीं। फिर आँखें खोलकर देखते ही अवधपुरी में पहुँच गया। मुझे देखकर श्री रामजी मुस्कुराने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरंत उनके मुख में चला गया।1॥

*** उदर माझ सुनु अंडज राया। देखउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥ अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥2॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! सुनिए, मैंने उनके पेट में बहुत से ब्रह्माण्डों के समूह देखे। वहाँ (उन ब्रह्माण्डों में) अनेकों विचित्र लोक थे, जिनकी रचना एक से एक की बढ़कर थी॥2॥

*** कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा॥ अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥3॥

भावार्थ:-

करोड़ों ब्रह्माजी और शिवजी, अनगिनत तारागण, सूर्य और चंद्रमा, अनगिनत लोकपाल, यम और काल, अनगिनत विशाल पर्वत और भूमि,॥3॥

*** सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥। सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥4॥

भावार्थ:-

असंख्य समुद्र, नदी, तालाब और वन तथा और भी नाना प्रकार की सृष्टि का विस्तार देखा। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर तथा चारों प्रकार के जड़ और चेतन जीव देखे॥4॥

दोहा :

*** जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ। सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥80 क॥

भावार्थ:-

जो कभी न देखा था, न सुना था और जो मन में भी नहीं समा सकता था (अर्थात जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी), वही सब अद्भुत सृष्टि मैंने देखी। तब उसका किस प्रकार

वर्णन किया जाए!॥80 (क)॥

*** एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक। एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक॥80 ख॥

भावार्थ:-

मैं एक-एक ब्रह्माण्ड में एक-एक सौ वर्ष तक रहता। इस प्रकार मैं अनेकों ब्रह्माण्ड देखता फिरा॥80 (ख)॥

चौपाई :

*** लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता॥ नर गंधर्ब भूत बेताल॥ किंनर निसिचर पसु खग ब्याला॥1॥

भावार्थ:-

प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, भिन्न-भिन्न विष्णु, शिव, मनु, दिक्पाल, मनुष्य, गंधर्व, भूत, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प,॥1॥

*** देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती॥ महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनइ आना॥2॥

भावार्थ:-

तथा नाना जाति के देवता एवं दैत्यगण थे। सभी जीव वहाँ दूसरे ही प्रकार के थे। अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत तथा सब सृष्टि वहाँ दूसरे ही दूसरी प्रकार की थी॥ 2॥

*** अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। दाखेउँ जिनस अनेक अनूपा॥ अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥3॥

भावार्थ:-

प्रत्येक ब्रह्माण्ड में मैंने अपना रूप देखा तथा अनेकों अनुपम वस्तुएँ देखीं। प्रत्येक भुवन में न्यारी ही अवधपुरी, भिन्न ही सरयूजी और भिन्न प्रकार के ही नर-नारी थे॥3॥

*** दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता॥ प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बालबिनोद अपारा॥4॥

भावार्थ:-

हे तात! सुनिए, दशरथजी, कौसल्याजी और भरतजी आदि भाई भी भिन्न-भिन्न रूपों के थे। मैं प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामावतार और उनकी अपार बाल लीलाएँ देखता फिरता॥4॥

दोहा :

*** भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान। अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन॥81 क॥

भावार्थ:-

हे हरिवाहन! मैंने सभी कुछ भिन्न-भिन्न और अत्यंत विचित्र देखा। मैं अनगिनत ब्रह्माण्डों में

फिरा, पर प्रभु श्री रामचंद्रजी को मैंने दूसरी तरह का नहीं देखा॥81 (क)॥

*** सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर। भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर॥81 ख॥

भावार्थ:-

सर्वत्र वही शिशुपन, वही शोभा और वही कृपालु श्री रघुवीर। इस प्रकार मोह रूपी पवन की प्रेरणा से मैं भुवन-भुवन में देखता-फिरता था॥81 (ख)॥

चौपाई :

***भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका॥ फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ॥1॥

भावार्थ:-

अनेक ब्रह्माण्डों में भटकते मुझे मानो एक सौ कल्प बीत गए। फिरता-फिरता मैं अपने आश्रम में आया और कुछ काल वहाँ रहकर बिताया॥1॥

*** निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ॥ देखउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई॥2॥

भावार्थ:-

फिर जब अपने प्रभु का अवधपुरी में जन्म (अवतार) सुन पाया, तब प्रेम से परिपूर्ण होकर मैं हर्षपूर्वक उठ दौड़ा। जाकर मैंने जन्म महोत्सव देखा, जिस प्रकार मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ॥2॥

*** राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना॥ तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना॥3॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के पेट में मैंने बहुत से जगत् देखे, जो देखते ही बनते थे, वर्णन नहीं किए जा सकते। वहाँ फिर मैंने सुजान माया के स्वामी कृपालु भगवान् श्री राम को देखा॥3॥

*** करउँ बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी॥ उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा॥4॥

भावार्थ:-

मैं बार-बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोह रूपी कीचड़ से व्याप्त थी। यह सब मैंने दो ही घड़ी में देखा। मन में विशेष मोह होने से मैं थक गया॥4॥

दोहा :

*** देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर। बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर॥82 क॥

भावार्थ:-

मुझे व्याकुल देखकर तब कृपालु श्री रघुवीर हँस दिए। हे धीर बुद्धि गरुड़जी! सुनिए, उनके हँसते

ही मैं मुँह से बाहर आ गया॥82 (क)॥

*** सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम। कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ बिश्राम॥82 ख॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी मेरे साथ फिर वही लड़कपन करने लगे। मैं करोड़ों (असंख्य) प्रकार से मन को समझाता था, पर वह शांति नहीं पाता था॥82 (ख)॥

चौपाई :

*** देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥ धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥1॥

भावार्थ:-

यह (बाल) चरित्र देखकर और पेट के अंदर (देखी हुई) उस प्रभुता का स्मरण कर मैं शरीर की सुध भूल गया और हे आर्तजनों के रक्षक! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, पुकारता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। मुख से बात नहीं निकलती थी!॥1॥

*** प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥ कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥2॥

भावार्थ:-

तदनन्तर प्रभु ने मुझे प्रेमविह्वल देखकर अपनी माया की प्रभुता (प्रभाव) को रोक लिया। प्रभु ने अपना करकमल मेरे सिर पर रखा। दीनदयालु ने मेरा संपूर्ण दुःख हर लिया॥2॥

*** कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥ प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अति भारी॥3॥

भावार्थ:-

सेवकों को सुख देने वाले, कृपा के समूह (कृपामय) श्री रामजी ने मुझे मोह से सर्वथा रहित कर दिया। उनकी पहले वाली प्रभुता को विचार-विचारकर (याद कर-करके) मेरे मन में बड़ा भारी हर्ष हुआ॥3॥

*** भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेषी॥ सजल नयन पुलकित्त कर जोरी। कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी॥4॥

भावार्थ:-

प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदय में बहुत ही प्रेम उत्पन्न हुआ। फिर मैंने(आनंद से) नेत्रों में जल भरकर, पुलकित होकर और हाथ जोड़कर बहुत प्रकार से विनती की॥4॥

दोहा :

*** सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास। बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास॥83 क॥

भावार्थ:-

मेरी प्रेमयुक्त वाणी सुनकर और अपने दास को दीन देखकर रमानिवास श्री रामजी सुखदायक, गंभीर और कोमल वचन बोले-॥83 (क)॥

*** काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि। अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥83 ख॥

भावार्थ:-

हे काकभुशुण्डि! तू मुझे अत्यंत प्रसन्न जानकर वर माँग। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ, दूसरी ऋद्धियाँ तथा संपूर्ण सुखों की खान मोक्ष॥83 (ख)॥

चौपाई :

***ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना॥ आजु देउँ सब संसय नाहीं। मागु जो तोहि भाव मन माहीं॥1॥

भावार्थ:-

ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान, (तत्त्वज्ञान) और वे अनेकों गुण जो जगत् में मुनियों के लिए भी दुर्लभ हैं, ये सब मैं आज तुझे दूँगा, इसमें संदेह नहीं। जो तेरे मन भावे, सो माँग ले॥1॥

*** सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ॥ प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर मैं बहुत ही प्रेम में भर गया। तब मन में अनुमान करने लगा कि प्रभु ने सब सुखों के देने की बात कही, यह तो सत्य है, पर अपनी भक्ति देने की बात नहीं कही॥2॥

*** भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥ भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा॥3॥

भावार्थ:-

भक्ति से रहित सब गुण और सब सुख वैसे ही (फीके) हैं जैसे नमक के बिना बहुत प्रकार के भोजन के पदार्थ। भजन से रहित सुख किस काम के? हे पक्षीराज! ऐसा विचार कर मैं बोला-॥3॥

*** जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू॥ मन भावत बर मागउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी॥4॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देते हैं और मुझ पर कृपा और स्नेह करते हैं तो हे स्वामी! मैं अपना मनभाया वर माँगता हूँ। आप उदार हैं और हृदय के भीतर की जानने वाले हैं॥4॥

दोहा :

***अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव। जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥84 क॥

भावार्थ:-

आपकी जिस अविरल (प्रगाढ़) एवं विशुद्ध (अनन्य निष्काम) भक्ति को श्रुति और पुराण गाते हैं, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और प्रभु की कृपा से कोई विरला ही जिसे पाता है॥84 (क)॥

*** भगत कल्पतरू प्रनत हित कृपा सिंधु सुखधाम। सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥84 ख॥

भावार्थ:-

हे भक्तों के (मन इच्छित फल देने वाले) कल्पवृक्ष! हे शरणागत के हितकारी! हे कृपासागर! हे सुखधान श्री रामजी! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिए॥84 (ख)॥

चौपाई :

*** एवमस्तु कहि रघुकुलनायक। बोले बचन परम सुखदायक॥ सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न मागसि अस बरदाना॥1॥

भावार्थ:-

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रघुवंश के स्वामी परम सुख देने वाले वचन बोले- हे काक! सुन, तू स्वभाव से ही बुद्धिमान् है। ऐसा वरदान कैसे न माँगता?॥1॥

*** सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥ जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं॥2॥

भावार्थ:-

तूने सब सुखों की खान भक्ति माँग ली, जगत् में तेरे समान बड़भागी कोई नहीं है। वे मुनि जो जप और योग की अग्नि से शरीर जलाते रहते हैं, करोड़ों यत्न करके भी जिसको (जिस भक्ति को) नहीं पाते॥2॥

*** रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई॥ सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें॥3॥

भावार्थ:-

वही भक्ति तूने माँगी। तेरी चतुरता देखकर मैं रीझ गया। यह चतुरता मुझे बहुत ही अच्छी लगी। हे पक्षी! सुन, मेरी कृपा से अब समस्त शुभ गुण तेरे हृदय में बसेंगे॥3॥

*** भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥ जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥4॥

भावार्थ:-

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीलाएँ और उनके रहस्य तथा विभाग- इन सबके भेद को तू मेरी कृपा से ही जान जाएगा। तुझे साधन का कष्ट नहीं होगा॥4॥

दोहा :

***माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि। जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर

मोहि॥85 क॥

भावार्थ:-

माया से उत्पन्न सब भ्रम अब तुझको नहीं व्यापेंगे। मुझे अनादि, अजन्मा, अगुण (प्रकृति के गुणों से रहित) और (गुणातीत दिव्य) गुणों की खान ब्रह्म जानना॥85 (क)॥

*** मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग। कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग॥85 ख॥

भावार्थ:-

हे काक! सुन, मुझे भक्त निरंतर प्रिय हैं, ऐसा विचार कर शरीर, वचन और मन से मेरे चरणों में अटल प्रेम करना॥85 (ख)॥

चौपाई :

*** अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥ निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥1॥

भावार्थ:-

अब मेरी सत्य, सुगम, वेदादि के द्वारा वर्णित परम निर्मल वाणी सुन। मैं तुझको यह 'निज सिद्धांत' सुनाता हूँ। सुनकर मन में धारण कर और सब तजकर मेरा भजन कर॥1॥

*** बमम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा॥ सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥2॥

भावार्थ:-

यह सारा संसार मेरी माया से उत्पन्न है। (इसमें) अनेकों प्रकार के चराचर जीव हैं। वे सभी मुझे प्रिय हैं, क्योंकि सभी मेरे उत्पन्न किए हुए हैं। (किंतु) मनुष्य मुझको सबसे अधिक अच्छे लगते हैं॥2॥

*** तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी॥ तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी॥3॥

भावार्थ:-

उन मनुष्यों में द्विज, द्विजों में भी वेदों को (कंठ में) धारण करने वाले, उनमें भी वेदोक्त धर्म पर चलने वाले, उनमें भी विरक्त (वैराग्यवान्) मुझे प्रिय हैं। वैराग्यवानों में फिर ज्ञानी और ज्ञानियों से भी अत्यंत प्रिय विज्ञानी हैं॥3॥

*** तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥ पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥4॥

भावार्थ:-

विज्ञानियों से भी प्रिय मुझे अपना दास है, जिसे मेरी ही गति (आश्रय) है, कोई दूसरी आशा नहीं है। मैं तुझसे बार-बार सत्य ('निज सिद्धांत') कहता हूँ कि मुझे अपने सेवक के समान प्रिय कोई

भी नहीं है॥4॥

*** भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥ भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥5॥

भावार्थ:-

भक्तिहीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवों के समान ही प्रिय है, परंतु भक्तिमान् अत्यंत नीच भी प्राणी मुझे प्राणों के समान प्रिय है, यह मेरी घोषणा है॥5॥

दोहा :

*** सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग। श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग॥86॥

भावार्थ:-

पवित्र, सुशील और सुंदर बुद्धि वाला सेवक, बता, किसको प्यारा नहीं लगता? वेद और पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं। हे काक! सावधान होकर सुन॥86॥

चौपाई :

*** एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा॥ कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥1॥

भावार्थ:-

एक पिता के बहुत से पुत्र पृथक्-पृथक् गुण, स्वभाव और आचरण वाले होते हैं। कोई पंडित होता है, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी,॥1॥

*** कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥ कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा॥2॥

भावार्थ:-

कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। पिता का प्रेम इन सभी पर समान होता है, परंतु इनमें से यदि कोई मन, वचन और कर्म से पिता का ही भक्त होता है, स्वप्न में भी दूसरा धर्म नहीं जानता,॥2॥

*** सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥ एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥3॥

भावार्थ:-

वह पुत्र पिता को प्राणों के समान प्रिय होता है, यद्यपि (चाहे) वह सब प्रकार से अज्ञान (मूर्ख) ही हो। इस प्रकार तिर्यक् (पशु-पक्षी), देव, मनुष्य और असुरों समेत जितने भी चेतन और जड़ जीव हैं,॥3॥

***अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥ तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥4॥

भावार्थ:-

(उनसे भरा हुआ) यह संपूर्ण विश्व मेरा ही पैदा किया हुआ है। अतः सब पर मेरी बराबर दया है, परंतु इनमें से जो मद और माया छोड़कर मन, वचन और शरीर से मुझको भजता है,॥4॥

दोहा :

*** पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥87 क॥

भावार्थ:-

वह पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो, कपट छोड़कर जो भी सर्वभाव से मुझे भजता है, वही मुझे परम प्रिय है॥87 (क)॥

सोरठा :

*** सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय। अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब॥87 ख॥

भावार्थ:-

हे पक्षी! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ पवित्र (अनन्य एवं निष्काम) सेवक मुझे प्राणों के समान प्यारा है। ऐसा विचारकर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझी को भज॥87 (ख)॥

चौपाई :

*** कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥ प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ॥1॥

भावार्थ:-

तुझे काल कभी नहीं व्यापेगा। निरंतर मेरा स्मरण और भजन करते रहना। प्रभु के वचनामृत सुनकर मैं तृप्त नहीं होता था। मेरा शरीर पुलकित था और मन में मैं अत्यंत ही हर्षित हो रहा था॥1॥

*** सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥ प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किम सकहिं तिन्हहि नहिं बयना॥2॥

भावार्थ:-

वह सुख मन और कान ही जानते हैं। जीभ से उसका बखान नहीं किया जा सकता। प्रभु की शोभा का वह सुख नेत्र ही जानते हैं। पर वे कह कैसे सकते हैं। उनके वाणी तो है नहीं॥2॥

*** बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु कौतुक तेई॥ सजल नयन कछु मुखकरि रूखा। चितई मातु लागी अति भूखा॥3॥

भावार्थ:-

मुझे बहुत प्रकार से भलीभाँति समझकर और सुख देकर प्रभु फिर वही बालकों के खेल करने लगे। नेत्रों में जल भरकर और मुख को कुछ रूखा (सा) बनाकर उन्होंने माता की ओर देखा-

(और मुखाकृति तथा चितवन से माता को समझा दिया कि) बहुत भूख लगी है॥3॥
*** देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदु बचन लिए उर लाई॥ गोद राखि कराव पय पाना। रघुपति चरित ललित कर गाना॥4॥
भावार्थ:-
यह देखकर माता तुरंत उठ दौड़ीं और कोमल वचन कहकर उन्होंने श्री रामजी को छाती से लगा लिया। वे गोद में लेकर उन्हें दूध पिलाने लगीं और श्री रघुनाथजी (उन्हीं) की ललित लीलाएँ गाने लगीं॥4॥
सोरठा :
*** जेहि सुख लाग पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद। अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन॥88 क॥
भावार्थ:-
जिस सुख के लिए (सबको) सुख देने वाले कल्याण रूप त्रिपुरारि शिवजी ने अशुभ वेष धारण किया, उस सुख में अवधपुरी के नर-नारी निरंतर निमग्न रहते हैं॥88 (क)॥
*** सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ। ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति॥88 ख॥
भावार्थ:-
उस सुख का लवलेशमात्र जिन्होंने एक बार स्वप्न में भी प्राप्त कर लिया, हे पक्षीराज! वे सुंदर बुद्धि वाले सज्जन पुरुष उसके सामने ब्रह्मसुख को भी कुछ नहीं गिनते॥88 (ख)॥
चौपाई :
***मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बालबिनोद रसाला॥ राम प्रसाद भगति बर पायउँ। प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउँ॥1॥
भावार्थ:-
मैं और कुछ समय तक अवधपुरी में रहा और मैंने श्री रामजी की रसीली बाल लीलाएँ देखीं। श्री रामजी की कृपा से मैंने भक्ति का वरदान पाया। तदनन्तर प्रभु के चरणों की वंदना करके मैं अपने आश्रम पर लौट आया॥1॥
*** तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया॥ यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि मायाँ जिमि मोहि नचावा॥2॥
भावार्थ:-
इस प्रकार जब से श्री रघुनाथजी ने मुझको अपनाया, तब से मुझे माया कभी नहीं व्यापी। श्री हरि की माया ने मुझे जैसे नचाया, वह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा॥2॥
*** निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥ राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥3॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज गरुड़! अब मैं आपसे अपना निजी अनुभव कहता हूँ। (वह यह है कि) भगवान् के भजन बिना क्लेश दूर नहीं होते। हे पक्षीराज! सुनिए, श्री रामजी की कृपा बिना श्री रामजी की प्रभुता नहीं जानी जाती,॥3॥

*** जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥ प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥4॥

भावार्थ:-

प्रभुता जाने बिना उन पर विश्वास नहीं जमता, विश्वास के बिना प्रीति नहीं होती और प्रीति बिना भक्ति वैसे ही दृढ़ नहीं होती जैसे हे पक्षीराज! जल की चिकनाई ठहरती नहीं॥4॥

सोरठा :

*** बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु। गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥89 क॥

भावार्थ:-

गुरु के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? अथवा वैराग्य के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि श्री हरि की भक्ति के बिना क्या सुख मिल सकता है?॥89 (क)॥

*** कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु। चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ॥89 ख॥

भावार्थ:-

हे तात! स्वाभाविक संतोष के बिना क्या कोई शांति पा सकता है? (चाहे) करोड़ों उपाय करके पच-पच मारिए, (फिर भी) क्या कभी जल के बिना नाव चल सकती है?॥89 (ख)॥

चौपाई :

*** बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥ राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥1॥

भावार्थ:-

संतोष के बिना कामना का नाश नहीं होता और कामनाओं के रहते स्वप्न में भी सुख नहीं हो सकता और श्री राम के भजन बिना कामनाएँ कहीं मिट सकती हैं? बिना धरती के भी कहीं पेड़ उग सकता है?॥1॥

***बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ॥ श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥2॥

भावार्थ:-

विज्ञान (तत्त्वज्ञान) के बिना क्या समभाव आ सकता है? आकाश के बिना क्या कोई अवकाश (पोल) पा सकता है? श्रद्धा के बिना धर्म (का आचरण) नहीं होता। क्या पृथ्वी तत्त्व के बिना कोई

गंध पा सकता है?॥2॥

*** बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥ सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई॥3॥

भावार्थ:-

तप के बिना क्या तेज फैल सकता है? जल-तत्त्व के बिना संसार में क्या रस हो सकता है? पंडितजनों की सेवा बिना क्या शील (सदाचार) प्राप्त हो सकता है? हे गोसाईं! जैसे बिना तेज (अग्नि-तत्त्व) के रूप नहीं मिलता॥3॥

*** निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा॥ कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥4॥

भावार्थ:-

निज-सुख (आत्मानंद) के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है? वायु-तत्त्व के बिना क्या स्पर्श हो सकता है? क्या विश्वास के बिना कोई भी सिद्धि हो सकती है? इसी प्रकार श्री हरि के भजन बिना जन्म-मृत्यु के भय का नाश नहीं होता॥4॥

दोहा :

*** बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु। राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥90 क॥

भावार्थ:-

बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, भक्ति के बिना श्री रामजी पिघलते (ढरते) नहीं और श्री रामजी की कृपा के बिना जीव स्वप्न में भी शांति नहीं पाता॥90 (क)॥

सोरठा :

*** अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल। भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥90 ख॥

भावार्थ:-

हे धीरबुद्धि! ऐसा विचारकर संपूर्ण कुतर्कों और संदेहों को छोड़कर करुणा की खान सुंदर और सुख देने वाले श्री रघुवीर का भजन कीजिए॥90 (ख)॥ चौपाई

*** निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई॥ कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी॥1॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रभु के प्रताप और महिमा का गान किया। मैंने इसमें कोई बात युक्ति से बढ़ाकर नहीं कही है। यह सब अपनी आँखों देखी कही है॥1॥

*** महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥ निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं॥2॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी की महिमा, नाम, रूप और गुणों की कथा सभी अपार एवं अनंत हैं तथा श्री रघुनाथजी स्वयं भी अनंत हैं। मुनिगण अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार श्री हरि के गुण गाते हैं। वेद, शेष और शिवजी भी उनका पार नहीं पाते॥2॥

*** तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥ तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥3॥

भावार्थ:-

आप से लेकर मच्छरपर्यन्त सभी छोटे-बड़े जीव आकाश में उड़ते हैं, किंतु आकाश का अंत कोई नहीं पाता। इसी प्रकार हे तात! श्री रघुनाजी की महिमा भी अथाह है। क्या कभी कोई उसकी थाह पा सकता है?॥3॥

*** रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥ सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा॥4॥

भावार्थ:-

श्री रामजी का अरबों कामदेवों के समान सुंदर शरीर है। वे अनंत कोटि दुर्गाओं के समान शत्रुनाशक हैं। अरबों इंद्रों के समान उनका विलास (ऐश्वर्य) है। अरबों आकाशों के समान उनमें अनंत अवकाश (स्थान) है॥4॥

दोहा :

*** मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास। ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास॥91 क॥

भावार्थ:-

अरबों पवन के समान उनमें महान् बल है और अरबों सूर्यों के समान प्रकाश है। अरबों चंद्रमाओं के समान वे शीतल और संसार के समस्त भयों का नाश करने वाले हैं॥91 (क)॥

*** काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत। धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत॥91 ख॥

भावार्थ:-

अरबों कालों के समान वे अत्यंत दुस्तर, दुर्गम और दुरंत हैं। वे भगवान् अरबों धूमकेतुओं (पुच्छल तारों) के समान अत्यंत प्रबल हैं॥91 (ख)॥

चौपाई :

*** प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥ तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन॥1॥

भावार्थ:-

अरबों पातालों के समान प्रभु अथाह हैं। अरबों यमराजों के समान भयानक हैं। अनंतकोटि तीर्थों

के समान वे पवित्र करने वाले हैं। उनका नाम संपूर्ण पापसमूह का नाश करने वाला है॥1॥

*** हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥ कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना॥2॥

भावार्थ:-

श्री रघुवीर करोड़ों हिमालयों के समान अचल (स्थिर) हैं और अरबों समुद्रों के समान गहरे हैं। भगवान् अरबों कामधेनुओं के समान सब कामनाओं (इच्छित पदार्थों) के देने वाले हैं॥3॥

*** सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥ बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥3॥

भावार्थ:-

उनमें अनंतकोटि सरस्वतियों के समान चतुरता है। अरबों ब्रह्माओं के समान सृष्टि रचना की निपुणता है। वे करोड़ों विष्णुओं के समान पालन करने वाले और अरबों रुद्रों के समान संहार करने वाले हैं॥3॥

*** धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥ भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥4॥

भावार्थ:-

वे अरबों कुबेरों के समान धनवान् और करोड़ों मायाओं के समान सृष्टि के खजाने हैं। बोझ उठाने में वे अरबों शेषों के समान हैं। (अधिक क्या) जगदीश्वर प्रभु श्री रामजी (सभी बातों में) सीमारहित और उपमारहित हैं॥4॥

छंद :

*** निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥ एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं। प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

भावार्थ:-

श्री रामजी उपमारहित हैं, उनकी कोई दूसरी उपमा है ही नहीं। श्री राम के समान श्री राम ही हैं, ऐसा वेद कहते हैं। जैसे अरबों जुगनुओं के समान कहने से सूर्य। (प्रशंसा को नहीं वरन) अत्यंत लघुता को ही प्राप्त होता है (सूर्य की निंदा ही होती है)। इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धि के विकास के अनुसार मुनीश्वर श्री हरि का वर्णन करते हैं, किंतु प्रभु भक्तों के भावमात्र को ग्रहण करने वाले और अत्यंत कपालु हैं। वे उस वर्णन को प्रेमसहित सुनकर सुख मानते हैं।

दोहा :

*** रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ। संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ॥92 क॥

भावार्थ:-

श्री रामजी अपार गुणों के समुद्र हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है? संतों से मैंने जैसा कुछ सुना था, वही आपको सुनाया॥92 (क)॥

सोरठा :

*** भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन। तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन॥92 ख॥

भावार्थ:-

सुख के भंडार, करुणाधाम भगवान् भाव (प्रेम) के वश हैं। (अतएव) ममता, मद और मान को छोड़कर सदा श्री जानकीनाथजी का ही भजन करना चाहिए॥92 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए॥ नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना॥1॥

भावार्थ:-

भुशुण्डिजी के सुंदर वचन सुनकर पक्षीराज ने हर्षित होकर अपने पंख फुला लिए। उनके नेत्रों में (प्रेमानंद के आँसुओं का) जल आ गया और मन अत्यंत हर्षित हो गया। उन्होंने श्री रघुनाथजी का प्रताप हृदय में धारण किया॥1॥

*** पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना॥ पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा॥2॥

भावार्थ:-

वे अपने पिछले मोह को समझकर (याद करके) पछताने लगे कि मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य करके माना। गरुड़जी ने बार-बार काकभुशुण्डिजी के चरणों पर सिर नवाया और उन्हें श्री रामजी के ही समान जानकर प्रेम बढ़ाया॥2॥

*** गुर बिनु भव निध तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥ संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥3॥

भावार्थ:-

गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्माजी और शंकरजी के समान ही क्यों न हो। (गरुड़जी ने कहा-) हे तात! मुझे संदेह रूपी सर्प ने डस लिया था और (साँप के डसने पर जैसे विष चढ़ने से लहरें आती हैं वैसे ही) बहुत सी कुतर्क रूपी दुःख देने वाली लहरें आ रही थीं॥3॥

*** तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जिआयउ जन सुखदायक॥ तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥4॥

भावार्थ:-

आपके स्वरूप रूपी गारुड़ी (साँप का विष उतारने वाले) के द्वारा भक्तों को सुख देने वाले श्री

रघुनाथजी ने मुझे जिला लिया। आपकी कृपा से मेरा मोह नाश हो गया और मैंने श्री रामजी का अनुपम रहस्य जाना॥4॥

दोहा :

***ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि। बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि॥93 क॥

भावार्थ:-

उनकी (भुशुण्डिजी की) बहुत प्रकार से प्रशंसा करके, सिर नवाकर और हाथ जोड़कर फिर गरुड़जी प्रेमपूर्वक विनम्र और कोमल वचन बोले-॥93 (क)॥

*** प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि। कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि॥93 ख॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! हे स्वामी! मैं अपने अविवेक के कारण आपसे पूछता हूँ। हे कृपा के समुद्र! मुझे अपना 'निज दास' जानकर आदरपूर्वक (विचारपूर्वक) मेरे प्रश्न का उत्तर कहिए॥93 (ख)॥

चौपाई :

*** तुम्ह सर्बग्य तग्य तम पारा। सुमति सुसील सरल आचारा॥ ग्यान बिरति बिग्यान निवासा। रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा॥1॥

भावार्थ:-

आप सब कुछ जानने वाले हैं, तत्त्व के ज्ञाता हैं, अंधकार (माया) से परे, उत्तम बुद्धि से युक्त, सुशील, सरल आचरण वाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के धाम और श्री रघुनाथजी के प्रिय दास हैं॥1॥

*** कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥ राम चरित सुर सुंदर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी॥2॥

भावार्थ:-

आपने यह काक शरीर किस कारण से पाया? हे तात! सब समझाकर मुझसे कहिए। हे स्वामी! हे आकाशगामी! यह सुंदर रामचरित मानस आपने कहाँ पाया, सो कहिए॥2॥

*** नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं॥ मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरें मन संसय अहई॥3॥

भावार्थ:-

हे नाथ! मैंने शिवजी से ऐसा सुना है कि महाप्रलय में भी आपका नाश नहीं होता और ईश्वर (शिवजी) कभी मिथ्या वचन कहते नहीं। वह भी मेरे मन में संदेह है॥3॥

*** अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा॥ अंड कटाह अमित लय कारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी॥4॥

भावार्थ:-

(क्योंकि) हे नाथ! नाग, मनुष्य, देवता आदि चर-अचर जीव तथा यह सारा जगत् काल का कलेवा है। असंख्य ब्रह्मांडों का नाश करने वाला काल सदा बड़ा ही अनिवार्य है॥4॥

सोरठा :

*** तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन। मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल॥94 क॥

भावार्थ:-

(ऐसा वह) अत्यंत भयंकर काल आपको नहीं व्यापता (आप पर प्रभाव नहीं दिखलाता) इसका क्या कारण है? हे कृपालु मुझे कहिए यह ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल है?॥94 (क)॥

दोहा :

*** प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग। कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग॥94 ख॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! आपके आश्रम में आते ही मेरा मोह और भ्रम भाग गया। इसका क्या कारण है? हे नाथ! यह सब प्रेम सहित कहिए॥94 (ख)॥

चौपाई :

*** गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा॥ धन्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी॥1॥

भावार्थ:-

हे उमा! गरुड़जी की वाणी सुनकर काकभुशुण्डिजी हर्षित हुए और परम प्रेम से बोले हे सर्पों के शत्रु! आपकी बुद्धि धन्य है धन्य है! आपके प्रश्न मुझे बहुत ही प्यारे लगे॥1॥

*** सुनि तव प्रश्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम कै सुधि मोहि आई॥ सब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई॥2॥

भावार्थ:-

आपके प्रेमयुक्त सुंदर प्रश्न सुनकर मुझे अपने बहुत जन्मों की याद आ गई। मैं अपनी सब कथा विस्तार से कहता हूँ। हे तात! आदर सहित मन लगाकर सुनिए॥2॥

*** जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना॥ सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा॥3॥

भावार्थ:-

अनेक जप, तप, यज्ञ, शम (मन को रोकना), दम (इंद्रियों को रोकना), व्रत, दान, वैराग्य, विवेक, योग, विज्ञान आदि सबका फल श्री रघुनाथजी के चरणों में प्रेम होना है। इसके बिना कोई कल्याण नहीं पा सकता॥3॥

*** एहिं तन राम भगति मैं पाई। ताते मोहि ममता अधिकाई॥ जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥4॥

भावार्थ:-

मैंने इसी शरीर से श्री रामजी की भक्ति प्राप्त की है। इसी से इस पर मेरी ममता अधिक है। जिससे अपना कुछ स्वार्थ होता है, उस पर सभी कोई प्रेम करते हैं॥4॥

सोरठा :

*** पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं। अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित॥95 क॥

भावार्थ:-

हे गरुड़जी! वेदों में मानी हुई ऐसी नीति है और सज्जन भी कहते हैं कि अपना परम हित जानकर अत्यंत नीच से भी प्रेम करना चाहिए॥95 (क)॥

*** पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर। कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम॥95 ख॥

भावार्थ:-

रेशम कीड़े से होता है, उससे सुंदर रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसी से उस परम अपवित्र कीड़े को भी सब कोई प्राणों के समान पालते हैं॥95 (ख)॥

चौपाई :

*** स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥ सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥1॥

भावार्थ:-

जीव के लिए सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्म से श्री रामजी के चरणों में प्रेम हो। वही शरीर पवित्र और सुंदर है जिस शरीर को पाकर श्री रघुवीर का भजन किया जाए॥1॥

*** राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥ राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी॥2॥

भावार्थ:-

जो श्री रामजी के विमुख है वह यदि ब्रह्माजी के समान शरीर पा जाए तो भी कवि और पंडित उसकी प्रशंसा नहीं करते। इसी शरीर से मेरे हृदय में रामभक्ति उत्पन्न हुई। इसी से हे स्वामी यह मुझे परम प्रिय है॥2॥

*** तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥ प्रथम मोहँ मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा॥3॥

भावार्थ:-

मेरा मरण अपनी इच्छा पर है, परंतु फिर भी मैं यह शरीर नहीं छोड़ता, क्योंकि वेदों ने वर्णन

किया है कि शरीर के बिना भजन नहीं होता। पहले मोह ने मेरी बड़ी दुर्दशा की। श्री रामजी के विमुख होकर मैं कभी सुख से नहीं सोया॥3॥

*** नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना॥ कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥4॥

भावार्थ:-

अनेकों जन्मों में मैंने अनेकों प्रकार के योग, जप, तप, यज्ञ और दान आदि कर्म किए। हे गरुड़जी! जगत् में ऐसी कौन योनि है, जिसमें मैंने (बार-बार) घूम-फिरकर जन्म न लिया हो॥4॥

*** देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं॥ सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी॥5॥

भावार्थ:-

हे गुसाईं! मैंने सब कर्म करके देख लिए, पर अब (इस जन्म) की तरह मैं कभी सुखी नहीं हुआ। हे नाथ! मुझे बहुत से जन्मों की याद है, (क्योंकि) श्री शिवजी की कृपा से मेरी बुद्धि को मोह ने नहीं घेरा॥5॥

दोहा :

*** प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस। सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस॥96 क॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! सुनिए, अब मैं अपने प्रथम जन्म के चरित्र कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्रभु के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, जिससे सब क्लेश मिट जाते हैं॥96 (क)॥

*** पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल। नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल॥96 ख॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! पूर्व के एक कल्प में पापों का मूल युग कलियुग था, जिसमें पुरुष और स्त्री सभी अधर्मपारायण और वेद के विरोधी थे॥96 (ख)॥

चौपाई :

*** तेहिं कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई॥ सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी॥1॥

भावार्थ:-

उस कलियुग में मैं अयोध्यापुरी में जाकर शूद्र का शरीर पाकर जन्मा। मैं मन, वचन और कर्म से शिवजी का सेवक और दूसरे देवताओं की निंदा करने वाला अभिमानी था॥1॥

***धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला॥ जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥2॥

भावार्थ:-

मैं धन के मद से मतवाला, बहुत ही बकवादी और अग्रबुद्धि वाला था, मेरे हृदय में बड़ा भारी दंभ था। यद्यपि मैं श्री रघुनाथजी की राजधानी में रहता था, तथापि मैंने उस समय उसकी महिमा कुछ भी नहीं जानी॥2॥

*** अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥ कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥3॥

भावार्थ:-

अब मैंने अवध का प्रभाव जाना। वेद, शास्त्र और पुराणों ने ऐसा गाया है कि किसी भी जन्म में जो कोई भी अयोध्या में बस जाता है, वह अवश्य ही श्री रामजी के परायण हो जाएगा॥3॥

*** अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं रामु धनुपानी॥ सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥4॥

भावार्थ:-

अवध का प्रभाव जीव तभी जानता है, जब हाथ में धनुष धारण करने वाले श्री रामजी उसके हृदय में निवास करते हैं। हे गरुड़जी! वह कलिकाल बड़ा कठिन था। उसमें सभी नर-नारी पापपरायण (पापों में लिप्त) थे॥4॥

दोहा :

*** कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ। दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥97 क॥

भावार्थ:-

कलियुग के पापों ने सब धर्मों को ग्रस लिया, सद्ग्रंथ लुप्त हो गए, दम्भियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना कर-करके बहुत से पंथ प्रकट कर दिए॥97 (क)॥

*** भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म। सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥97 ख॥

भावार्थ:-

सभी लोग मोह के वश हो गए, शुभ कर्मों को लोभ ने हड़प लिया। हे ज्ञान के भंडार! हे श्री हरि के वाहन! सुनिए, अब मैं कलि के कुछ धर्म कहता हूँ॥97 (ख)॥

चौपाई :

*** बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी। द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥1॥

भावार्थ:-

कलियुग में न वर्णधर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं। सब पुरुष-स्त्री वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेदों के बेचने वाले और राजा प्रजा को खा डालने वाले होते हैं। वेद की आज्ञा

कोई नहीं मानता॥1॥

*** मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥ मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥2॥

भावार्थ:-

जिसको जो अच्छा लग जाए, वही मार्ग है। जो डींग मारता है, वही पंडित है। जो मिथ्या आरंभ करता (आडंबर रचता) है और जो दंभ में रत है, उसी को सब कोई संत कहते हैं॥2॥

*** सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥ जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥3॥

भावार्थ:-

जो (जिस किसी प्रकार से) दूसरे का धन हरण कर ले, वही बुद्धिमान है। जो दंभ करता है, वही बड़ा आचारी है। जो झूठ बोलता है और हँसी-दिल्लगी करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान कहा जाता है॥3॥

*** निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥ जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥4॥

भावार्थ:-

जो आचारहीन है और वेदमार्ग को छोड़े हुए है, कलियुग में वही ज्ञानी और वही वैराग्यवान् है। जिसके बड़े-बड़े नख और लंबी-लंबी जटाएँ हैं, वही कलियुग में प्रसिद्ध तपस्वी है॥4॥

दोहा :

*** असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं। तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥98 क॥

भावार्थ:-

जो अमंगल वेष और अमंगल भूषण धारण करते हैं और भक्ष्य-भक्ष्य (खाने योग्य और न खाने योग्य) सब कुछ खा लेते हैं वे ही योगी हैं, वे ही सिद्ध हैं और वे ही मनुष्य कलियुग में पूज्य हैं॥98 (क)॥

सोरठा :

*** जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ। मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ॥98 ख॥

भावार्थ:-

जिनके आचरण दूसरों का अपकार (अहित) करने वाले हैं, उन्हीं का बड़ा गौरव होता है और वे ही सम्मान के योग्य होते हैं। जो मन, वचन और कर्म से लबार (झूठ बकने वाले) हैं, वे ही कलियुग में वक्ता माने जाते हैं॥98 (ख)॥

चौपाई :

*** नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥ सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेल जनेऊ लेहिं कुदाना॥1॥

भावार्थ:-

हे गोसाईं! सभी मनुष्य स्त्रियों के विशेष वश में हैं और बाजीगर के बंदर की तरह (उनके नचाए) नाचते हैं। ब्राह्मणों को शूद्र ज्ञानोपदेश करते हैं और गले में जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं॥1॥

***सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी॥ गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥2॥

भावार्थ:-

सभी पुरुष काम और लोभ में तत्पर और क्रोधी होते हैं। देवता, ब्राह्मण, वेद और संतों के विरोधी होते हैं। अभागिनी स्त्रियाँ गुणों के धाम सुंदर पति को छोड़कर पर पुरुष का सेवन करती हैं॥2॥

*** सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना॥ गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥3॥

भावार्थ:-

सुहागिनी स्त्रियाँ तो आभूषणों से रहित होती हैं, पर विधवाओं के नित्य नए श्रृंगार होते हैं। शिष्य और गुरु में बहरे और अंधे का सा हिसाब होता है। एक (शिष्य) गुरु के उपदेश को सुनता नहीं, एक (गुरु) देखता नहीं (उसे ज्ञानदृष्टि) प्राप्त नहीं है)॥3॥

*** हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई॥ मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥4॥

भावार्थ:-

जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है, पर शोक नहीं हरण करता, वह घोर नरक में पड़ता है। माता-पिता बालकों को बुलाकर वही धर्म सिखलाते हैं, जिससे पेट भरे॥4॥

दोहा :

*** ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात। कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥99 क॥

भावार्थ:-

स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात नहीं करते, पर वे लोभवश कौड़ियों (बहुत थोड़े लाभ) के लिए ब्राह्मण और गुरु की हत्या कर डालते हैं॥99 (क)॥

*** बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि। जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि॥99 ख॥

भावार्थ:-

शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं (और कहते हैं) कि हम क्या तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को

जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। (ऐसा कहकर) वे उन्हें डाँटकर आँखें दिखलाते हैं॥99 (ख)॥

चौपाई :

*** पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥ तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर॥1॥

भावार्थ:-

जो पराई स्त्री में आसक्त, कपट करने में चतुर और मोह, द्रोह और ममता में लिपटे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेदवादी (ब्रह्म और जीव को एक बताने वाले) ज्ञानी हैं। मैंने उस कलियुग का यह चरित्र देखा॥1॥

*** आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं॥ कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका॥2॥

भावार्थ:-

वे स्वयं तो नष्ट हुए ही रहते हैं, जो कहीं सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं, उनको भी वे नष्ट कर देते हैं। जो तर्क करके वेद की निंदा करते हैं, वे लोग कल्प-कल्पभर एक-एक नरक में पड़े रहते हैं॥2

*** जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा। पनारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥3॥

भावार्थ:-

तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, कोल और कलवार आदि जो वर्ण में नीचे हैं, स्त्री के मरने पर अथवा घर की संपत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुँड़ाकर संन्यासी हो जाते हैं॥3॥

*** ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥ बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥4॥

भावार्थ:-

वे अपने को ब्राह्मणों से पुजवाते हैं और अपने ही हाथों दोनों लोक नष्ट करते हैं। ब्राह्मण अपढ़, लोभी, कामी, आचारहीन, मूर्ख और नीची जाति की व्यभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी होते हैं॥4॥

*** सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥ सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥5॥।

भावार्थ:-

शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते हैं तथा ऊँचे आसन (व्यास गद्दी) पर बैठकर पुराण कहते हैं। सब मनुष्य मनमाना आचरण करते हैं। अपार अनीति का वर्णन नहीं किया जा सकता॥5॥

दोहा :

*** भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग। करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग॥100 क॥

भावार्थ:-

कलियुग में सब लोग वर्णसंकर और मर्यादा से च्युत हो गए। वे पाप करते हैं और (उनके फलस्वरूप) दुःख, भय, रोग, शोक और (प्रिय वस्तु का) वियोग पाते हैं॥100 (क)॥

*** श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक। तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥100 ख॥

भावार्थ:-

वेद सम्मत तथा वैराग्य और ज्ञान से युक्त जो हरिभक्ति का मार्ग है, मोहवश मनुष्य उस पर नहीं चलते और अनेकों नए-नए पंथों की कल्पना करते हैं॥100 (ख)॥

छंद :

*** बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती॥ तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥1॥

भावार्थ:-

संन्यासी बहुत धन लगाकर घर सजाते हैं। उनमें वैराग्य नहीं रहा, उसे विषयों ने हर लिया। तपस्वी धनवान हो गए और गृहस्थ दरिद्र। हे तात! कलियुग की लीला कुछ कही नहीं जाती॥1॥

*** कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥ सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥2॥

भावार्थ:-

कुलवती और सती स्त्री को पुरुष घर से निकाल देते हैं और अच्छी चाल को छोड़कर घर में दासी को ला रखते हैं। पुत्र अपने माता-पिता को तभी तक मानते हैं, जब तक स्त्री का मुँह नहीं दिखाई पड़ता॥2॥

***ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें॥ नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥3॥

भावार्थ:-

जब से ससुराल प्यारी लगने लगी, तब से कुटुम्बी शत्रु रूप हो गए। राजा लोग पाप परायण हो गए, उनमें धर्म नहीं रहा। वे प्रजा को नित्य ही (बिना अपराध) दंड देकर उसकी विडंबना (दुर्दशा) किया करते हैं॥3॥

*** धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥ नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो॥4॥

भावार्थ:-

धनी लोग मलिन (नीच जाति के) होने पर भी कुलीन माने जाते हैं। द्विज का चिह्न जनेऊ

मात्र रह गया और नंगे बदन रहना तपस्वी का। जो वेदों और पुराणों को नहीं मानते, कलियुग में वे ही हरिभक्त और सच्चे संत कहलाते हैं॥4॥

*** कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी॥ कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥5॥

भावार्थ:-

कवियों के तो झुंड हो गए, पर दुनिया में उदार (कवियों का आश्रयदाता) सुनाई नहीं पड़ता। गुण में दोष लगाने वाले बहुत हैं पर गुणी कोई भी नहीं। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ते हैं। अन्न के बिना सब लोग दुःखी होकर मरते हैं॥5॥

दोहा :

*** सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड। मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥101 क॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज गरुड़जी! सुनिए कलियुग में कपट, हठ (दुराग्रह), दम्भ, द्वेष, पाखंड, मान, मोह और काम आदि (अर्थात् काम, क्रोध और लोभ) और मद ब्रह्माण्डभर में व्याप्त हो गए (छा गए)॥101 (क)॥

*** तामस धर्म करिहिं नर जप तप ब्रत मख दान। देव न बरषहिं धरनी बए न जामहिं धान॥101 ख॥

भावार्थ:-

मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान आदि धर्म तामसी भाव से करने लगे। देवता (इंद्र) पृथ्वी पर जल नहीं बरसाते और बोया हुआ अन्न उगता नहीं॥101 (ख)॥

छंद :

*** अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥ सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥1॥

भावार्थ:-

स्त्रियों के बाल ही भूषण हैं (उनके शरीर पर कोई आभूषण नहीं रह गया) और उनको भूख बहुत लगती है (अर्थात् वे सदा अतृप्त ही रहती हैं)। वे धनहीन और बहुत प्रकार की ममता होने के कारण दुःखी रहती हैं। वे मूर्ख सुख चाहती हैं, पर धर्म में उनका प्रेम नहीं है। बुद्धि थोड़ी है और कठोर है, उनमें कोमलता नहीं है॥1॥

*** नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं॥ लघु जीवन संबदु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा॥2॥

भावार्थ:-

मनुष्य रोगों से पीड़ित हैं, भोग (सुख) कहीं नहीं है। बिना ही कारण अभिमान और विरोध करते

हैं। दस-पाँच वर्ष का थोड़ा सा जीवन है, परंतु घमंड ऐसा है मानो कल्पांत (प्रलय) होने पर भी उनका नाश नहीं होगा॥2॥

*** कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा॥ नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता॥3॥

भावार्थ:-

कलिकाल ने मनुष्य को बेहाल (अस्त-व्यस्त) कर डाला। कोई बहिन-बेटी का भी विचार नहीं करता। (लोगों में) न संतोष है, न विवेक है और न शीतलता है। जाति, कुजाति सभी लोग भीख माँगने वाले हो गए॥3॥

*** इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥ सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए॥4॥

भावार्थ:-

ईर्षा (डाह), कडुवे वचन और लालच भरपूर हो रहे हैं, समता चली गई। सब लोग वियोग और विशेष शोक से मरे पड़े हैं। वर्णाश्रम धर्म के आचरण नष्ट हो गए॥4॥

*** दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी॥ तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे॥5॥

भावार्थ:-

इंद्रियों का दमन, दान, दया और समझदारी किसी में नहीं रही। मूर्खता और दूसरों को ठगना, यह बहुत अधिक बढ़ गया। स्त्री-पुरुष सभी शरीर के ही पालन-पोषण में लगे रहते हैं। जो पराई निंदा करने वाले हैं, जगत् में वे ही फैले हैं॥5॥

दोहा :

*** सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार। गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार॥102 क॥

भावार्थ:-

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! सुनिए, कलिकाल पाप और अवगुणों का घर है, किंतु कलियुग में एक गुण भी बड़ा है कि उसमें बिना ही परिश्रम भवबंधन से छुटकारा मिल जाता है॥102 (क)॥

*** कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग। जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥102 ख॥

भावार्थ:-

सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में जो गति पूजा, यज्ञ और योग से प्राप्त होती है, वही गति कलियुग में लोग केवल भगवान् के नाम से पा जाते हैं॥102 (ख)॥

चौपाई :

*** कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥ त्रेताँ बिबिध जग्य नर

करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं॥1॥
भावार्थ:-
सत्ययुग में सब योगी और विज्ञानी होते हैं। हरि का ध्यान करके सब प्राणी भवसागर से तर जाते हैं। त्रेता में मनुष्य अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और सब कर्मों को प्रभु को समर्पण करके भवसागर से पार हो जाते हैं॥1॥
*** द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥ कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥2॥
भावार्थ:-
द्वापर में श्री रघुनाथजी के चरणों की पूजा करके मनुष्य संसार से तर जाते हैं दूसरा कोई उपाय नहीं है और कलियुग में तो केवल श्री हरि की गुणगाथाओं का गान करने से ही मनुष्य भवसागर की थाह पा जाते हैं॥2॥
*** कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥ सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥3॥
भावार्थ:-
कलियुग में न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान ही है। श्री रामजी का गुणगान ही एकमात्र आधार है। अतएव सारे भरोसे त्यागकर जो श्री रामजी को भजता है और प्रेमसहित उनके गुणसमूहों को गाता है॥3॥
*** सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥ कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥4॥
भावार्थ:-
वही भवसागर से तर जाता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। नाम का प्रताप कलियुग में प्रत्यक्ष है। कलियुग का एक पवित्र प्रताप (महिमा) है कि मानसिक पुण्य तो होते हैं, पर (मानसिक) पाप नहीं होते॥4॥
दोहा :
*** कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास। गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥103 क॥
भावार्थ:-
यदि मनुष्य विश्वास करे, तो कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है, (क्योंकि) इस युग में श्री रामजी के निर्मल गुणसमूहों को गा-गाकर मनुष्य बिना ही परिश्रम संसार (रूपी समुद्र) से तर जाता है॥103 (क)॥
*** प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान। जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥103 ख॥

भावार्थ:-

धर्म के चार चरण (सत्य, दया, तप और दान) प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कलि में एक (दान रूपी) चरण ही प्रधान है। जिस किसी प्रकार से भी दिए जाने पर दान कल्याण ही करता है॥103 (ख)॥

चौपाई :

*** नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे॥ सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥1॥

भावार्थ:-

श्री रामजी की माया से प्रेरित होकर सबके हृदयों में सभी युगों के धर्म नित्य होते रहते हैं। शुद्ध सत्त्वगुण, समता, विज्ञान और मन का प्रसन्न होना, इसे सत्ययुग का प्रभाव जानें॥1॥

*** सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा॥ बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥2॥

भावार्थ:-

सत्त्वगुण अधिक हो, कुछ रजोगुण हो, कर्मों में प्रीति हो, सब प्रकार से सुख हो, यह त्रेता का धर्म है। रजोगुण बहुत हो, सत्त्वगुण बहुत ही थोड़ा हो, कुछ तमोगुण हो, मन में हर्ष और भय हो, यह द्वापर का धर्म है॥2॥

*** तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥ बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥3॥

भावार्थ:-

तमोगुण बहुत हो, रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर वैर-विरोध हो, यह कलियुग का प्रभाव है। पंडित लोग युगों के धर्म को मन में जान (पहचान) कर, अधर्म छोड़कर धर्म में प्रीति करते हैं॥3॥

*** काल धर्म नहिं ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥ नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया॥4॥

भावार्थ:-

जिसका श्री रघुनाथजी के चरणों में अत्यंत प्रेम है, उसको कालधर्म (युगधर्म) नहीं व्यापते। हे पक्षीराज! नट (बाजीगर) का किया हुआ कपट चरित्र (इंद्रजाल) देखने वालों के लिए बड़ा विकट (दुर्गम) होता है, पर नट के सेवक (जंभूरे) को उसकी माया नहीं व्यापती॥4॥

दोहा :

*** हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं। भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥104 क॥

भावार्थ:-

श्री हरि की माया के द्वारा रचे हुए दोष और गुण श्री हरि के भजन बिना नहीं जाते। मन में ऐसा विचार कर, सब कामनाओं को छोड़कर (निष्काम भाव से) श्री रामजी का भजन करना

चाहिए॥104 (क)॥

*** तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउँ अवध बिहगेस। परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस॥104 ख॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! उस कलिकाल में मैं बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहा। एक बार वहाँ अकाल पड़ा, तब मैं विपत्ति का मारा विदेश चला गया॥104 (ख)॥

चौपाई :

*** गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी॥ गएँ काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई॥1॥

भावार्थ:-

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! सुनिए, मैं दीन, मलिन (उदास), दरिद्र और दुःखी होकर उज्जैन गया। कुछ काल बीतने पर कुछ संपत्ति पाकर फिर मैं वहीं भगवान् शंकर की आराधना करने लगा॥1॥

*** बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा॥ परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥2॥

भावार्थ:-

एक ब्राह्मण वेदविधि से सदा शिवजी की पूजा करते, उन्हें दूसरा कोई काम न था। वे परम साधु और परमार्थ के ज्ञाता थे, वे शंभु के उपासक थे, पर श्री हरि की निंदा करने वाले न थे॥2॥

*** तेहि सेवउँ मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता॥ बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं॥3॥

भावार्थ:-

मैं कपटपूर्वक उनकी सेवा करता। ब्राह्मण बड़े ही दयालु और नीति के घर थे। हे स्वामी! बाहर से नम्र देखकर ब्राह्मण मुझे पुत्र की भाँति मानकर पढ़ाते थे॥3॥

*** संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिधि बिधि कीन्हा॥ जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदयँ दंभ अहमिति अधिकाई॥4॥

भावार्थ:-

उन ब्राह्मण श्रेष्ठ ने मुझको शिवजी का मंत्र दिया और अनेकों प्रकार के शुभ उपदेश किए। मैं शिवजी के मंदिर में जाकर मंत्र जपता। मेरे हृदय में दंभ और अहंकार बढ़ गया॥4॥

दोहा :

*** मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह। हरि जन द्विज देखें जरउँ करउँ बिष्नु कर द्रोह॥105 क॥

भावार्थ:-

मैं दुष्ट, नीच जाति और पापमयी मलिन बुद्धि वाला मोहवश श्री हरि के भक्तों और द्विजों को देखते ही जल उठता और विष्णु भगवान् से द्रोह करता था॥105 (क)॥

गुरुजी का अपमान एवं शिवजी के शाप की बात सुनना

सोरठा :

*** गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम। मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई॥105 ख॥

भावार्थ:-

गुरुजी मेरे आचरण देखकर दुखित थे। वे मुझे नित्य ही भली-भाँति समझाते, पर (मैं कुछ भी नहीं समझता), उलटे मुझे अत्यंत क्रोध उत्पन्न होता। दंभी को कभी नीति अच्छी लगती है?॥105 (ख)॥

चौपाई :

*** एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई॥ सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥1॥

भावार्थ:-

एक बार गुरुजी ने मुझे बुला लिया और बहुत प्रकार से (परमार्थ) नीति की शिक्षा दी कि हे पुत्र! शिवजी की सेवा का फल यही है कि श्री रामजी के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति हो॥1॥

*** रामहि भजहिं तात सिव धाता। नर पावँर कै केतिक बाता॥ जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी॥2॥

भावार्थ:-

हे तात! शिवजी और ब्रह्माजी भी श्री रामजी को भजते हैं (फिर) नीच मनुष्य की तो बात ही कितनी है? ब्रह्माजी और शिवजी जिनके चरणों के प्रेमी हैं, अरे अभागे! उनसे द्रोह करके तू सुख चाहता है?॥2॥

***हर कहुँ हरि सेवक गुर कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ॥ अधम जाति मैं बिद्या पाएँ। भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ॥3॥

भावार्थ:-

गुरुजी ने शिवजी को हरि का सेवक कहा। यह सुनकर हे पक्षीराज! मेरा हृदय जल उठा। नीच जाति का मैं विद्या पाकर ऐसा हो गया जैसे दूध पिलाने से साँप॥3॥

*** मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुर कर द्रोह करउँ दिनु राती॥ अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा॥4॥

भावार्थ:-

अभिमानी, कुटिल, दुर्भाग्य और कुजाति मैं दिन-रात गुरुजी से द्रोह करता। गुरुजी अत्यंत दयालु थे, उनको थोड़ा सा भी क्रोध नहीं आता। (मेरे द्रोह करने पर भी) वे बार-बार मुझे उत्तम ज्ञान की ही शिक्षा देते थे॥4॥

*** जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा॥ धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥5॥

भावार्थ:-

नीच मनुष्य जिससे बड़ाई पाता है, वह सबसे पहले उसी को मारकर उसी का नाश करता है। हे भाई! सुनिए, आग से उत्पन्न हुआ धुआँ मेघ की पदवी पाकर उसी अग्नि को बुझा देता है॥5॥

*** रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई॥ मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥6॥

भावार्थ:-

धूल रास्ते में निरादर से पड़ी रहती है और सदा सब (राह चलने वालों) की लातों की मार सहती है। पर जब पवन उसे उड़ाता (ऊँचा उठाता) है, तो सबसे पहले वह उसी (पवन) को भर देती है और फिर राजाओं के नेत्रों और किरीटों (मुकुटों) पर पड़ती है॥6॥

*** सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा॥ कबि कोबिद गावहिं असि नीति। खल सन कलह न भल नहिं प्रीति॥7॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज गरुड़जी! सुनिए, ऐसी बात समझकर बुद्धिमान, लोग अधम (नीच) का संग नहीं करते। कवि और पंडित ऐसी नीति कहते हैं कि दुष्ट से न कलह ही अच्छा है, न प्रेम ही॥7॥

*** उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं॥ मैं खल हृदयँ कपट कुटिलाई। गुर हित कहइ न मोहि सोहाई॥8॥

भावार्थ:-

हे गोसाईं! उससे तो सदा उदासीन ही रहना चाहिए। दुष्ट को कुत्ते की तरह दूर से ही त्याग देना चाहिए। मैं दुष्ट था, हृदय में कपट और कुटिलता भरी थी, (इसलिए यद्यपि) गुरुजी हित की बात कहते थे, पर मुझे वह सुहाती न थी॥8॥

दोहा :

*** एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम। गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥106 क॥

भावार्थ:-

एक दिन मैं शिवजी के मंदिर में शिवनाम जप रहा था। उसी समय गुरुजी वहाँ आए, पर अभिमान के मारे मैंने उठकर उनको प्रणाम नहीं किया॥106 (क)॥

*** सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस। अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस॥106 ख॥

भावार्थ:-

गुरुजी दयालु थे (मेरा दोष देखकर भी) उन्होंने कुछ नहीं कहा, उनके हृदय में लेशमात्र भी क्रोध नहीं हुआ। पर गुरु का अपमान बहुत बड़ा पाप हैअतः महादेवजी उसे नहीं सह सके॥106 (ख)॥

चौपाई :

*** मंदिर माझ भई नभबानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी॥ जद्यपि तव गुर के नहिं क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा॥1

भावार्थ:-

मंदिर में आकाशवाणी हुई कि अरे हतभाग्य! मूर्ख! अभिमानी! यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नहीं है, वे अत्यंत कृपालु चित्त के हैं और उन्हें (पूर्ण तथा) यथार्थ ज्ञान है,॥1॥

*** तदपि साप सठ दैहउँ तोही। नीति बिरोध सोहाइ न मोही॥ जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा॥2॥

भावार्थ:-

तो भी हे मूर्ख! तुझको मैं शाप दूँगा, (क्योंकि) नीति का विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। अरे दुष्ट! यदि मैं तुझे दण्ड न दूँ तो मेरा वेदमार्ग ही भ्रष्ट हो जाए॥2॥

*** जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं॥ त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा॥3॥

भावार्थ:-

जो मूर्ख गुरु से ईर्षा करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं। फिर (वहाँ से निकलकर) वे तिर्यक् (पशु, पक्षी आदि) योनियों में शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्मों तक दुःख पाते रहते हैं॥3॥

*** बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी॥ महा बिटप कोटर महुँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई॥4॥

भावार्थ:-

अरे पापी! तू गुरु के सामने अजगर की भाँति बैठा रहा। रे दुष्ट! तेरी बुद्धि पाप से ढँक गई है, (अतः) तू सर्प हो जा और अरे अधम से भी अधम! इस अधोगति (सर्प की नीची योनि) को पाकर किसी बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर रह॥4॥

दोहा :

*** हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप। कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप॥107 क॥

भावार्थ:-

शिवजी का भयानक शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया। मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय में बड़ा संताप उत्पन्न हुआ॥107 (क)॥

रुद्राष्टक

*** करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि। बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि॥107 ख॥

भावार्थ:-

प्रेम सहित दण्डवत् करके वे ब्राह्मण श्री शिवजी के सामने हाथ जोड़कर मेरी भयंकर गति (दण्ड) का विचार कर गदगद वाणी से विनती करने लगे-॥107 (ख)॥

छंद :

*** नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥ निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥1॥

भावार्थ:-

हे मोक्षस्वरूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेदस्वरूप, ईशान दिशा के ईश्वर तथा सबके स्वामी श्री शिवजी मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निजस्वरूप में स्थित (अर्थात् मायादिरहित), (मायिक) गुणों से रहित, भेदरहित, इच्छारहित, चेतन आकाश रूप एवं आकाश को ही वस्त्र रूप में धारण करने वाले दिगम्बर (अथवा आकाश को भी आच्छादित करने वाले) आपको मैं भजता हूँ॥1॥

*** निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं॥ करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं॥2॥

भावार्थ:-

निराकार, ओंकार के मूल, तुरीय (तीनों गुणों से अतीत), वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे, कैलासपति, विकराल, महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणों के धाम, संसार से परे आप परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ॥2॥

*** तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरं॥ स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा॥3॥

भावार्थ:-

जो हिमाचल के समान गौरवर्ण तथा गंभीर हैं, जिनके शरीर में करोड़ों कामदेवों की ज्योति एवं शोभा है, जिनके सिर पर सुंदर नदी गंगाजी विराजमान हैं, जिनके ललाट पर द्वितीया का चंद्रमा और गले में सर्प सुशोभित है॥3॥

*** चलत्कुण्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥ मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं ।

प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥4॥

भावार्थ:-

जिनके कानों में कुण्डल हिल रहे हैं, सुंदर भ्रुकुटी और विशाल नेत्र हैं, जो प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं, सिंह चर्म का वस्त्र धारण किए और मुण्डमाला पहने हैं, उन सबके प्यारे और सबके नाथ (कल्याण करने वाले) श्री शंकरजी को मैं भजता हूँ॥4॥

*** प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं॥ त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥5॥

भावार्थ:-

प्रचण्ड (रुद्ररूप), श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मे, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाले, तीनों प्रकार के शूलों (दुःखों) को निर्मूल करने वाले, हाथ में त्रिशूल धारण किए, भाव (प्रेम) के द्वारा प्राप्त होने वाले भवानी के पति श्री शंकरजी को मैं भजता हूँ॥5॥

*** कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी॥ चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥6॥

भावार्थ:-

कलाओं से परे, कल्याणस्वरूप, कल्प का अंत (प्रलय) करने वाले, सज्जनों को सदा आनंद देने वाले, त्रिपुर के शत्रु, सच्चिदानंदघन, मोह को हरने वाले, मन को मथ डालने वाले कामदेव के शत्रु, हे प्रभो! प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए॥6॥

*** न यावद् उमानाथ पादारविंदं। भजंतीह लोके परे वा नराणां॥ न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं॥7॥

भावार्थ:-

जब तक पार्वती के पति आपके चरणकमलों को मनुष्य नहीं भजते, तब तक उन्हें न तो इहलोक और परलोक में सुख-शांति मिलती है और न उनके तापों का नाश होता है। अतः हे समस्त जीवों के अंदर (हृदय में) निवास करने वाले हे प्रभो! प्रसन्न होइए॥7॥

*** न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं॥ जरा जन्म दुःखोद्य तातप्यमानं॥ प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥8॥

भावार्थ:-

मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही। हे शम्भो! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! बुढ़ापा तथा जन्म (मृत्यु) के दुःख समूहों से जलते हुए मुझ दुःखी की दुःख से रक्षा कीजिए। हे ईश्वर! हे शम्भो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥8॥ श्लोक :

*** रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥9॥

भावार्थ:-

भगवान् रुद्र की स्तुति का यह अष्टक उन शंकरजी की तुष्टि (प्रसन्नता) के लिए ब्राह्मण द्वारा कहा गया। जो मनुष्य इसे भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं, उन पर भगवान् शम्भु प्रसन्न होते हैं॥9॥

गुरुजी का शिवजी से अपराध क्षमापन, शापानुग्रह और काकभुशुण्डि की आगे की कथा

दोहा :

*** सुनि बिनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु। पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु॥108 क॥

भावार्थ:-

सर्वज्ञ शिवजी ने विनती सुनी और ब्राह्मण का प्रेम देखा। तब मंदिर में आकाशवाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ! वर माँगो॥108 (क)॥

*** जौं प्रसन्न प्रभो मो पर नाथ दीन पर नेहु। निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहु॥108 ख॥

भावार्थ:-

(ब्राह्मण ने कहा-) हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और हे नाथ! यदि इस दीन पर आपका स्नेह है, तो पहले अपने चरणों की भक्ति देकर फिर दूसरा वर दीजिए॥108 (ख)॥

*** तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान। तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान॥108 ग॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! यह अज्ञानी जीव आपकी माया के वश होकर निरंतर भूला फिरता है। हे कृपा के समुद्र भगवान्! उस पर क्रोध न कीजिए॥108 (ग)॥

*** संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल। साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल॥108 घ॥

भावार्थ:-

हे दीनों पर दया करने वाले (कल्याणकारी) शंकर! अब इस पर कृपालु होइए (कृपा कीजिए), जिससे हे नाथ! थोड़े ही समय में इस पर शाप के बाद अनुग्रह (शाप से मुक्ति) हो जाए॥108 (घ)॥

चौपाई :

*** एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥ बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी॥1॥

भावार्थ:-

हे कृपानिधान! अब वही कीजिए, जिससे इसका परम कल्याण हो। दूसरे के हित से सनी हुई

ब्राह्मण की वाणी सुनकर फिर आकाशवाणी हुई 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)॥1॥

*** जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा॥ तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेषी॥2॥

भावार्थ:-

यद्यपि इसने भयानक पाप किया है और मैंने भी इसे क्रोध करके शाप दिया है, तो भी तुम्हारी साधुता देखकर मैं इस पर विशेष कृपा करूँगा॥2॥

*** छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥ मोर श्राप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जन्म सहस अवस्य यह पाइहि॥3॥

भावार्थ:-

हे द्विज! जो क्षमाशील एवं परोपकारी होते हैं, वे मुझे वैसे ही प्रिय हैं जैसे खरारि श्री रामचंद्रजी। हे द्विज! मेरा शाप व्यर्थ नहीं जाएगा। यह हजार जन्म अवश्य पाएगा॥3॥

*** जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई॥ कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना॥4॥

भावार्थ:-

परंतु जन्मने और मरने में जो दुःसह दुःख होता है, इसको वह दुःख जरा भी न व्यापेगा और किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नहीं मिटेगा। हे शूद्र! मेरा प्रामाणिक (सत्य) वचन सुन॥4॥

*** रघुपति पुरीं जन्म तव भयऊ। पुनि मैं मम सेवाँ मन दयऊ॥ पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें। राम भगति उपजिहि उर तोरें॥5॥

भावार्थ:-

(प्रथम तो) तेरा जन्म श्री रघुनाथजी की पुरी में हुआ। फिर तूने मेरी सेवा में मन लगाया। पुरी के प्रभाव और मेरी कृपा से तेरे हृदय में रामभक्ति उत्पन्न होगी॥5॥

*** सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई॥ अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना॥6॥

भावार्थ:-

हे भाई! अब मेरा सत्य वचन सुन। द्विजों की सेवा ही भगवान् को प्रसन्न करने वाला व्रत है। अब कभी ब्राह्मण का अपमान न करना। संतों को अनंत श्री भगवान् ही के समान जानना॥6॥

*** इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला॥ जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई॥7॥

भावार्थ:-

इंद्र के वज्र, मेरे विशाल त्रिशूल, काल के दंड और श्री हरि के विकराल चक्र के मारे भी जो नहीं मरता, वह भी विप्रद्रोह रूपी अग्नि से भस्म हो जाता है॥7॥

*** अस बिबेक राखेहु मन माहीं। तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥ औरउ एक आसिषा मोरी।

अप्रतिहत गति होइहि तोरी॥8॥

भावार्थ:-

ऐसा विवेक मन में रखना। फिर तुम्हारे लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ न होगा। मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि तुम्हारी सर्वत्र अबाध गति होगी (अर्थात् तुम जहाँ जाना चाहोगे, वहीं बिना रोक-टोक के जा सकोगे)॥8॥

दोहा :

*** सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि। मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि॥109 क॥

भावार्थ:-

(आकाशवाणी के द्वारा) शिवजी के वचन सुनकर गुरुजी हर्षित होकर 'ऐसा ही हो' यह कहकर मुझे बहुत समझाकर और शिवजी के चरणों को हृदय में रखकर अपने घर गए॥109 (क)॥

*** प्रेरित काल बिंधि गिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल। पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल॥109 ख॥

भावार्थ:-

काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल में जाकर सर्प हुआ। फिर कुछ काल बीतने पर बिना ही परिश्रम (कष्ट) के मैंने वह शरीर त्याग दिया।109 (ख)॥

*** जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान। जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान॥109 ग॥

भावार्थ:-

हे हरिवाहन! मैं जो भी शरीर धारण करता, उसे बिना ही परिश्रम वैसे ही सुखपूर्वक त्याग देता था, जैसे मनुष्य पुराना वस्त्र त्याग देता है और नया पहिन लेता है॥109 (ग)॥

*** सिवँ राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेस। एहि बिधि धरेउँ बिबिधि तनु ग्यान न गयउ खगेस॥109 घ॥

भावार्थ:-

शिवजी ने वेद की मर्यादा की रक्षा की और मैंने क्लेश भी नहीं पाया। इस प्रकार हे पक्षीराज! मैंने बहुत से शरीर धारण किए पर मेरा ज्ञान नहीं गया॥109 (घ)॥

चौपाई :

*** त्रिजग देव नर जोइ तनु धरउँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ॥ एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुर कर कोमल सील सुभाऊ॥1॥

भावार्थ:-

तिर्यक् योनि (पशु-पक्षी), देवता या मनुष्य का, जो भी शरीर धारण करता, वहाँ-वहाँ (उस-उस शरीर में) मैं श्री रामजी का भजन जारी रखता। (इस प्रकार मैं सुखी हो गया), परंतु एक शूल मुझे बना

रहा। गुरुजी का कोमल, सुशील स्वभाव मुझे कभी नहीं भूलता (अर्थात् मैंने ऐसे कोमल स्वभाव दयालु गुरु का अपमान किया, यह दुःख मुझे सदा बना रहा)॥1॥

*** चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई॥ खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला॥2॥

भावार्थ:-

मैंने अंतिम शरीर ब्राह्मण का पाया, जिसे पुराण और वेद देवताओं को भी दुर्लभ बताते हैं। मैं वहाँ (ब्राह्मण शरीर में) भी बालकों में मिलकर खेलता तो श्री रघुनाथजी की ही सब लीलाएँ किया करता॥2॥

*** प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा॥ मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥3॥

भावार्थ:-

सयाना होने पर पिताजी मुझे पढ़ाने लगे। मैं समझता, सुनता और विचारता, पर मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता था। मेरे मन से सारी वासनाएँ भाग गईं। केवल श्री रामजी के चरणों में लव लग गई॥3॥

*** कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥ प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥4॥

भावार्थ:-

हे गरुड़जी! कहिए, ऐसा कौन अभागा होगा जो कामधेनु को छोड़कर गदही की सेवा करेगा? प्रेम में मग्न रहने के कारण मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। पिताजी पढ़ा-पढ़ाकर हार गए॥4॥

*** भय कालबस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जनत्राता॥ जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावउँ। आश्रम जाइ जाइ सिरु नावउँ॥5॥

भावार्थ:-

जब पिता-माता कालवश हो गए (मर गए), तब मैं भक्तों की रक्षा करने वाले श्री रामजी का भजन करने के लिए वन में चला गया। वन में जहाँ-जहाँ मुनीश्वरों के आश्रम पाता, वहाँ-वहाँ जा-जाकर उन्हें सिर नवाता॥5॥

*** बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा॥ सुनत फिरउँ हरि गुन अनुबादा। अब्याहत गति संभु प्रसादा॥6॥

भावार्थ:-

हे गरुड़जी ! उनसे मैं श्री रामजी के गुणों की कथाएँ पूछता। वे कहते और मैं हर्षित होकर सुनता। इस प्रकार मैं सदा-सर्वदा श्री हरि के गुणानुवाद सुनता फिरता। शिवजी की कृपा से मेरी सर्वत्र अबाधित गति थी (अर्थात् मैं जहाँ चाहता वहीं जा सकता था)॥6॥

*** छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥ राम चरन बारिज जब देखौं। तब

निज जन्म सफल करि लेखौं॥7॥
भावार्थ:-
मेरी तीनों प्रकार की (पुत्र की, धन की और मान की) गहरी प्रबल वासनाएँ छूट गईं और हृदय में एक यही लालसा अत्यंत बढ़ गई कि जब श्री रामजी के चरणकमलों के दर्शन करूँ तब अपना जन्म सफल हुआ समझूँ॥7॥
*** जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्ब भूतमय अहई॥ निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥8॥
भावार्थ:-
जिनसे मैं पूछता, वे ही मुनि ऐसा कहते कि ईश्वर सर्वभूतमय है। यह निर्गुण मत मुझे नहीं सुहाता था। हृदय में सगुण ब्रह्म पर प्रीति बढ़ रही थी॥8॥

काकभुशुण्डिजी का लोमशजी के पास जाना और शाप तथा अनुग्रह पाना

दोहा :
*** गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग। रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग॥110 क॥
भावार्थ:-
गुरुजी के वचनों का स्मरण करके मेरा मन श्री रामजी के चरणों में लग गया। मैं क्षण-क्षण नया-नया प्रेम प्राप्त करता हुआ श्री रघुनाथजी का यश गाता फिरता था॥110 (क)॥
*** मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन। देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन॥110 ख॥
भावार्थ:-
सुमेरु पर्वत के शिखर पर बड़ की छाया में लोमश मुनि बैठे थे। उन्हें देखकर मैंने उनके चरणों में सिर नवाया और अत्यंत दीन वचन कहे॥110 (ख)॥
*** सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज। मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज॥110 ग॥
भावार्थ:-
हे पक्षीराज! मेरे अत्यंत नम्र और कोमल वचन सुनकर कृपालु मुनि मुझसे आदर के साथ पूछने लगे- हे ब्राह्मण! आप किस कार्य से यहाँ आए हैं॥110 (ग)॥
*** तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान। सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान॥110 घ॥

भावार्थ:-

तब मैंने कहा- हे कृपा निधि! आप सर्वज्ञ हैं और सुजान हैं। हे भगवान् मुझे सगुण ब्रह्म की आराधना (की प्रक्रिया) कहिए। 110 (घ)॥

चौपाई :

*** तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥ ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥1॥

भावार्थ:-

तब हे पक्षीराज! मुनीश्वर ने श्री रघुनाथजी के गुणों की कुछ कथाएँ आदर सहित कहीं। फिर वे ब्रह्मज्ञान परायण विज्ञानवान् मुनि मुझे परम अधिकारी जानकर॥1॥

*** लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥ अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥2॥

भावार्थ:-

ब्रह्म का उपदेश करने लगे कि वह अजन्मा है, अद्वैत है, निर्गुण है और हृदय का स्वामी (अंतर्यामी) है। उसे कोई बुद्धि के द्वारा माप नहीं सकता, वह इच्छारहित, नामरहित, रूपरहित, अनुभव से जानने योग्य, अखण्ड और उपमारहित है॥2॥

*** मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी॥ सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥3॥

भावार्थ:-

वह मन और इंद्रियों से परे, निर्मल, विनाशरहित, निर्विकार, सीमारहित और सुख की राशि है। वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है, (तत्वमसि), जल और जल की लहर की भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है॥3॥

*** बिबिधि भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा॥ पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥4॥

भावार्थ:-

मुनि ने मुझे अनेकों प्रकार से समझाया, पर निर्गुण मत मेरे हृदय में नहीं बैठा। मैंने फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर कहा- हे मुनीश्वर! मुझे सगुण ब्रह्म की उपासना कहिए॥4॥

*** राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥ सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥5॥

भावार्थ:-

मेरा मन रामभक्ति रूपी जल में मछली हो रहा है (उसी में रम रहा है)। हे चतुर मुनीश्वर ऐसी दशा में वह उससे अलग कैसे हो सकता है? आप दया करके मुझे वही उपदेश (उपाय) कहिए जिससे मैं श्री रघुनाथजी को अपनी आँखों से देख सकूँ॥5॥

*** भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥ मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥6॥

भावार्थ:-

(पहले) नेत्र भरकर श्री अयोध्यानाथ को देखकर, तब निर्गुण का उपदेश सुनूँगा। मुनि ने फिर अनुपम हरिकथा कहकर, सगुण मत का खण्डन करके निर्गुण का निरूपण किया॥6॥

*** तब मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥ उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥7॥

भावार्थ:-

तब मैं निर्गुण मत को हटाकर (काटकर) बहुत हठ करके सगुण का निरूपण करने लगा। मैंने उत्तर-प्रत्युत्तर किया, इससे मुनि के शरीर में क्रोध के चिह्न उत्पन्न हो गए॥7॥

*** सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ॥ अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥8॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! सुनिए, बहुत अपमान करने पर ज्ञानी के भी हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई चंदन की लकड़ी को बहुत अधिक रग़ड़े तो उससे भी अग्नि प्रकट हो जाएगी॥8॥

दोहा :

***बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान। मैं अपनें मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान॥111 क॥

भावार्थ:-

मुनि बार-बार क्रोध सहित ज्ञान का निरूपण करने लगे। तब मैं बैठा-बैठा अपने मन में अनेकों प्रकार के अनुमान करने लगा॥111 (क)॥

***क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान। मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान॥111 ख॥॥2॥

भावार्थ:-

बिना द्वैतबुद्धि के क्रोध कैसा और बिना अज्ञान के क्या द्वैतबुद्धि हो सकती है? माया के वश रहने वाला परिच्छिन्न जड़ जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है?॥111 (ख)॥

*** कबहुँ कि दुःख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें॥ परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका॥1॥

भावार्थ:-

सबका हित चाहने से क्या कभी दुःख हो सकता है? जिसके पास पारसमणि है, उसके पास क्या दरिद्रता रह सकती है? दूसरे से द्रोह करने वाले क्या निर्भय हो सकते हैं और कामी क्या कलंकरहित (बेदाग) रह सकते हैं?॥1॥

*** बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म की होहिं स्वरूपहि चीन्हें॥ काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी॥2॥

भावार्थ:-

ब्राह्मण का बुरा करने से क्या वंश रह सकता है? स्वरूप की पहिचान (आत्मज्ञान) होने पर क्या (आसक्तिपूर्वक) कर्म हो सकते हैं? दुष्टों के संग से क्या किसी के सुबुद्धि उत्पन्न हुई है? परस्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकता है?॥2॥

*** भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरिनिंदक॥ राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें॥3॥

भावार्थ:-

परमात्मा को जानने वाले कहीं जन्म-मरण (के चक्कर) में पड़ सकते हैं? भगवान् की निंदा करने वाले कभी सुखी हो सकते हैं? नीति बिना जाने क्या राज्य रह सकता है? श्री हरि के चरित्र वर्णन करने पर क्या पाप रह सकते हैं?॥3॥

*** पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई॥ लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥4॥

भावार्थ:-

बिना पुण्य के क्या पवित्र यश (प्राप्त) हो सकता है? बिना पाप के भी क्या कोई अपयश पा सकता है? जिसकी महिमा वेद, संत और पुराण गाते हैं और उस हरि भक्ति के समान क्या कोई दूसरा लाभ भी है?॥4॥

*** हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥ अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥5॥

भावार्थ:-

हे भाई! जगत् में क्या इसके समान दूसरी भी कोई हानि है कि मनुष्य का शरीर पाकर भी श्री रामजी का भजन न किया जाए? चुगलखोरी के समान क्या कोई दूसरा पाप है? और हे गरुड़जी! दया के समान क्या कोई दूसरा धर्म है?॥5॥

*** एहि बिधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनउँ॥ पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा॥6॥

भावार्थ:-

इस प्रकार मैं अनगिनत युक्तियाँ मन में विचारता था और आदर के साथ मुनि का उपदेश नहीं सुनता था। जब मैंने बार-बार सगुण का पक्ष स्थापित किया, तब मुनि क्रोधयुक्त वचन बोले॥6॥

*** मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥ सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही॥7॥

भावार्थ:-

अरे मूढ़! मैं तुझे सर्वोत्तम शिक्षा देता हूँ तो भी तू उसे नहीं मानता और बहुत से उत्तस्प्रत्युत्तर (दलीलें) लाकर रखता है। मेरे सत्य वचन पर विश्वास नहीं करता। कौए की भाँति सभी से डरता है॥7॥

*** सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला॥ लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई॥8॥

भावार्थ:-

अरे मूर्ख! तेरे हृदय में अपने पक्ष का बड़ा भारी हठ है, अतः तू शीघ्र चाण्डाल पक्षी (कौआ) हो जा। मैंने आनंद के साथ मुनि के शाप को सिर पर चढ़ा लिया। उससे मुझे न कुछ भय हुआ, न दीनता ही आई॥8॥

दोहा :

*** तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ। सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ॥112 क॥

भावार्थ:-

तब मैं तुरंत ही कौआ हो गया। फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर और रघुकुल शिरोमणि श्री रामजी का स्मरण करके मैं हर्षित होकर उड़ चला॥112 (क)॥

*** उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध। निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥112 ख॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! जो श्री रामजी के चरणों के प्रेमी हैं और काम, अभिमान तथा क्रोध से रहित हैं, वे जगत् को अपने प्रभु से भरा हुआ देखते हैं फिर वे किससे वैर करें॥112 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन॥ कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी॥1॥

भावार्थ:-

(काकभुशुण्डिजी ने कहा-) हे पक्षीराज गरुड़जी! सुनिए, इसमें ऋषि का कुछ भी दोष नहीं था। रघुवंश के विभूषण श्री रामजी ही सबके हृदय में प्रेरणा करने वाले हैं। कृपा सागर प्रभु ने मुनि की बुद्धि को भोली करके (भुलावा देकर) मेरे प्रेम की परीक्षा ली॥1॥

*** मन बच क्रम मोहि निज जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना॥ रिषि मम महत सीलता देखी। राम चरन बिस्वास बिसेषी॥2॥

भावार्थ:-

मन, वचन और कर्म से जब प्रभु ने मुझे अपना दास जान लिया, तब भगवान् ने मुनि की बुद्धि

फिर पलट दी। ऋषि ने मेरा महान् पुरुषों का सा स्वभाव (धैर्य, अक्रोध, विनय आदि) और श्री रामजी के चरणों में विशेष विश्वास देखा,॥2॥

*** अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई॥ मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा॥3॥

भावार्थ:-

तब मुनि ने बहुत दुःख के साथ बारबार पछताकर मुझे आदरपूर्वक बुला लिया। उन्होंने अनेकों प्रकार से मेरा संतोष किया और तब हर्षित होकर मुझे राममंत्र दिया॥3॥

*** बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥ सुंदर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा॥4॥

भावार्थ:-

कृपानिधान मुनि ने मुझे बालक रूप श्री रामजी का ध्यान (ध्यान की विधि) बतलाया। सुंदर और सुख देने वाला यह ध्यान मुझे बहुत ही अच्छा लगा। वह ध्यान मैं आपको पहले ही सुना चुका हूँ॥4॥

*** मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा॥ सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई॥5॥

भावार्थ:-

मुनि ने कुछ समय तक मुझको वहाँ (अपने पास) रखा। तब उन्होंने रामचरित मानस वर्णन किया। आदरपूर्वक मुझे यह कथा सुनाकर फिर मुनि मुझसे सुंदर वाणी बोले॥5॥

*** रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥ तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी॥6॥

भावार्थ:-

हे तात! यह सुंदर और गुप्त रामचरित मानस मैंने शिवजी की कृपा से पाया था। तुम्हें श्री रामजी का 'निज भक्त' जाना, इसी से मैंने तुमसे सब चरित्र विस्तार के साथ कहा॥6॥

*** राम भगति जिन्ह कें उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं॥ मुनि मोहि बिबिधि भाँति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा॥7॥

भावार्थ:-

हे तात! जिनके हृदय में श्री रामजी की भक्ति नहीं है, उनके सामने इसे कभी भी नहीं कहना चाहिए। मुनि ने मुझे बहुत प्रकार से समझाया। तब मैंने प्रेम के साथ मुनि के चरणों में सिर नवाया॥7॥

*** निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा॥ राम भगति अबिरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें॥8॥

भावार्थ:-

मुनीश्वर ने अपने करकमलों से मेरा सिर स्पर्श करके हर्षित होकर आशीर्वाद दिया कि अब मेरी कृपा से तेरे हृदय में सदा प्रगाढ़ राम भक्ति बसेगी॥8॥

दोहा :

*** सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान। कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥113 क॥

भावार्थ:-

तुम सदा श्री रामजी को प्रिय होओ और कल्याण रूप गुणों के धाम, मानरहित, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ, इच्छा मृत्यु (जिसकी शरीर छोड़ने की इच्छा करने पर ही मृत्यु हो, बिना इच्छा के मृत्यु न हो) एवं ज्ञान और वैराग्य के भण्डार होओ॥113 (क)॥

*** जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत। ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥113 ख॥

भावार्थ:-

इतना ही नहीं, श्री भगवान् को स्मरण करते हुए तुम जिस आश्रम में निवास करोगे वहाँ एक योजन (चार कोस) तक अविद्या (माया मोह) नहीं व्यापेगी॥113 (ख)॥

चौपाई :

*** काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ॥ राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥1॥

भावार्थ:-

काल, कर्म, गुण, दोष और स्वभाव से उत्पन्न कुछ भी दुःख तुमको कभी नहीं व्यापेगा। अनेकों प्रकार के सुंदर श्री रामजी के रहस्य (गुप्त मर्म के चरित्र और गुण), जो इतिहास और पुराणों में गुप्त और प्रकट हैं। (वर्णित और लक्षित हैं)॥1॥

*** बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ॥ जो इच्छा करिहहु मन माहीं हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥2॥

भावार्थ:-

तुम उन सबको भी बिना ही परिश्रम जान जाओगे। श्री रामजी के चरणों में तुम्हारा नित्य नया प्रेम हो। अपने मन में तुम जो कुछ इच्छा करोगे, श्री हरि की कृपा से उसकी पूर्ति कुछ भी दुर्लभ नहीं होगी॥2॥।

*** सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा॥ एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी॥3॥

भावार्थ:-

हे धीरबुद्धि गरुड़जी! सुनिए, मुनि का आशीर्वाद सुनकर आकाश में गंभीर ब्रह्मवाणी हुई कि हे ज्ञानी मुनि! तुम्हारा वचन ऐसा ही (सत्य) हो। यह कर्म, मन और वचन से मेरा भक्त है॥3॥

*** सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ॥ करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई॥4॥

भावार्थ:-

आकाशवाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैं प्रेम में मग्न हो गया और मेरा सब संदेह जाता रहा। तदनन्तर मुनि की विनती करके, आज्ञा पाकर और उनके चरणकमलों में बार-बार सिर नवाकर- ॥4॥

*** हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ॥ इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥5॥

भावार्थ:-

मैं हर्ष सहित इस आश्रम में आया। प्रभु श्री रामजी की कृपा से मैंने दुर्लभ वर पा लिया। हे पक्षीराज! मुझे यहाँ निवास करते सत्ताईस कल्प बीत गए॥5॥

*** करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना॥ जब जब अवधपुरीं रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥6॥

भावार्थ:-

मैं यहाँ सदा श्री रघुनाथजी के गुणों का गान किया करता हूँ और चतुर पक्षी उसेआदरपूर्वक सुनते हैं। अयोध्यापुरी में जब-जब श्री रघुवीर भक्तों के (हित के) लिए मनुष्य शरीर धारण करते हैं,॥6॥

*** तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥ पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा॥7॥

भावार्थ:-

तब-तब मैं जाकर श्री रामजी की नगरी में रहता हूँ और प्रभु की शिशुलीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर हे पक्षीराज! श्री रामजी के शिशु रूप को हृदय में रखकर मैं अपने आश्रम में आ जाता हूँ॥7॥

*** कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देहि जेहिं कारन पाई॥ कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी॥8॥

भावार्थ:-

जिस कारण से मैंने कौए की देह पाई, वह सारी कथा आपको सुना दी। हे तात! मैंने आपके सब प्रश्नों के उत्तर कहे। अहा! रामभक्ति की बड़ी भारी महिमा है॥8॥

दोहा :

*** ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह। निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह॥114 क॥

भावार्थ:-

मुझे अपना यह काक शरीर इसीलिए प्रिय है कि इसमें मुझे श्री रामजी के चरणों का प्रेम प्राप्त हुआ। इसी शरीर से मैंने अपने प्रभु के दर्शन पाए और मेरे सब संदेह जाते रहे (दूर हुए)॥114 (क)॥

मासपारायण, उनतीसवाँ विश्राम

ज्ञान-भक्ति-निरुपण, ज्ञान-दीपक और भक्ति की महान् महिमा

*** भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप। मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप॥114 ख॥

भावार्थ:-

मैं हठ करके भक्ति पक्ष पर अड़ा रहा, जिससे महर्षि लोमश ने मुझे शाप दिया, परंतु उसका फल यह हुआ कि जो मुनियों को भी दुर्लभ है वह वरदान मैंने पाया। भजन का प्रताप तो देखिए!॥114 (ख)॥

चौपाई :

*** जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥ ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥1॥

भावार्थ:-

जो भक्ति की ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान के लिए श्रम (साधन) करते हैं, वे मूर्ख घर पर खड़ी हुई कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मदार के पेड़ को खोजते फिरते हैं॥1॥

*** सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥ ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥2॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! सुनिए, जो लोग श्री हरि की भक्ति को छोड़कर दूसरे उपायों से सुख चाहते हैं, वे मूर्ख और जड़ करनी वाले (अभागे) बिना ही जहाज के तैरकर महासमुद्र के पार जाना चाहते हैं॥2॥

*** सुनि भसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी॥ तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं॥3॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! भुशुण्डिजी के वचन सुनकर गरुड़जी हर्षित होकर कोमल वाणी से बोले- हे प्रभो! आपके प्रसाद से मेरे हृदय में अब संदेह, शोक, मोह और कुछ भी नहीं रह गया॥3॥

*** सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपाँ लहेउँ बिश्रामा॥ एक बात प्रभु पूँछउँ तोही। कहहु

बुझाइ कृपानिधि मोही॥4॥
भावार्थ:-
मैंने आपकी कृपा से श्री रामचंद्रजी के पवित्र गुण समूहों को सुना और शांति प्राप्त की। हे प्रभो अब मैं आपसे एक बात और पूछता हूँ। हे कृपासागर मुझे समझाकर कहिए॥4॥
*** कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना॥ सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं॥5॥
भावार्थ:-
संत मुनि, वेद और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञान के समान दुर्लभ कुछ भी नहीं है। हे गोसाईं! वही ज्ञान मुनि ने आपसे कहा, परंतु आपने भक्ति के समान उसका आदर नहीं किया॥5॥
*** ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥ सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना॥6॥
भावार्थ:-
हे कृपा के धाम! हे प्रभो! ज्ञान और भक्ति में कितना अंतर है? यह सब मुझसे कहिए। गरुड़जी के वचन सुनकर सुजान काकभुशुण्डिजी ने सुख माना और आदर के साथ कहा-॥6॥
*** भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥ नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर॥7॥
भावार्थ:-
भक्ति और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही संसार से उत्पन्न क्लेशों को हर लेते हैं। हे नाथ! मुनीश्वर इनमें कुछ अंतर बतलाते हैं। हे पक्षीश्रेष्ठ! उसे सावधान होकर सुनिए॥7॥
*** ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥ पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥8॥
भावार्थ:-
बहे हरि वाहन! सुनिए, ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान- ये सब पुरुष हैं। पुरुष का प्रताप सब प्रकार से प्रबल होता है। अबला (माया) स्वाभाविक ही निर्बल और जाति (जन्म) से ही जड़ (मूर्ख) होती है॥8॥
दोहा :
*** पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर। न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर॥115 क॥
भावार्थ:-
परंतु जो वैराग्यवान् और धीरबुद्धि पुरुष हैं वही स्त्री को त्याग सकते हैं न कि वे कामी पुरुष, जो विषयों के वश में हैं (उनके गुलाम हैं) और श्री रघुवीर के चरणों से विमुख हैं॥115 (क)॥
सोरठा :

*** सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि। बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट॥115 ख॥

भावार्थ:-

वे ज्ञान के भण्डार मुनि भी मृगनयनी (युवती स्त्री) के चंद्रमुख को देखकर विवश (उसके अधीन) हो जाते हैं। हे गरुड़जी! साक्षात् भगवान विष्णु की माया ही स्त्री रूप से प्रकट है॥115 (ख)॥

चौपाई :

*** इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मत भाषउँ॥ मोह न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥1॥

भावार्थ:-

यहाँ मैं कुछ पक्षपात नहीं रखता। वेद, पुराण और संतों का मत (सिद्धांत) ही कहता हूँ। हे गरुड़जी! यह अनुपम (विलक्षण) रीति है कि एक स्त्री के रूप पर दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती॥1॥

*** माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥ पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥2॥

भावार्थ:-

आप सुनिए, माया और भक्ति- ये दोनों ही स्त्री वर्ग की हैं, यह सब कोई जानते हैं। फिर श्री रघुवीर को भक्ति प्यारी है। माया बेचारी तो निश्चय ही नाचने वाली (नटिनी मात्र) है॥2॥

*** भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥ राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥3॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी भक्ति के विशेष अनुकूल रहते हैं। इसी से माया उससे अत्यंत डरती रहती है। जिसके हृदय में उपमारहित और उपाधिरहित (विशुद्ध) रामभक्ति सदा बिना किसी बाधा (रोक-टोक) के बसती है,॥3॥

*** तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥ अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी॥4॥

भावार्थ:-

उसे देखकर माया सकुचा जाती है। उस पर वह अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं कर (चला) सकती। ऐसा विचार कर ही जो विज्ञानी मुनि हैं, वे भी सब सुखों की खानि भक्ति की ही याचना करते हैं॥4॥

दोहा :

*** यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ। जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ॥116 क॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी का यह रहस्य (गुप्त मर्म) जल्दी कोई भी नहीं जान पाता। श्री रघुनाथजी की कृपा से जो इसे जान जाता है, उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता॥116 (क)॥

*** औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन। जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन॥116 ख॥

भावार्थ:-

हे सुचतुर गरुड़जी! ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनिए, जिसके सुनने से श्री रामजी के चरणों में सदा अविच्छिन्न (एकतार) प्रेम हो जाता है॥116 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥ ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥1॥

भावार्थ:-

हे तात! यह अकथनीय कहानी (वार्ता) सुनिए। यह समझते ही बनती है, कही नहीं जा सकती। जीव ईश्वर का अंश है। (अतएव) वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है॥1॥

*** सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥ जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥2॥

भावार्थ:-

हे गोसाईं ! वह माया के वशीभूत होकर तोते और वानर की भाँति अपने आप ही बँध गया। इस प्रकार जड़ और चेतन में ग्रंथि (गाँठ) पड़ गई। यद्यपि वह ग्रंथि मिथ्या ही है, तथापि उसके छूटने में कठिनता है॥2॥

*** तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥ श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥3॥

भावार्थ:-

तभी से जीव संसारी (जन्मने-मरने वाला) हो गया। अब न तो गाँठ छूटती है और न वह सुखी होता है। वेदों और पुराणों ने बहुत से उपाय बतलाए हैं पर वह (ग्रंथि) छूटती नहीं वरन अधिकाधिक उलझती ही जाती है॥3॥

*** जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी॥ अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥4॥

भावार्थ:-

जीव के हृदय में अज्ञान रूपी अंधकार विशेष रूप से छा रहा है, इससे गाँठ देख ही नहीं पड़ती, छूटे तो कैसे? जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग (जैसा आगे कहा जाता है) उपस्थित कर देते हैं तब

भी कदाचित् ही वह (ग्रंथि) छूट पाती है॥4॥

*** सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई॥ जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥5॥

भावार्थ:-

श्री हरि की कृपा से यदि सात्विकी श्रद्धा रूपी सुंदर गो हृदय रूपी घर में आकर बस जाए, असंख्य जप, तप व्रत यम और नियमादि शुभ धर्म और आचार (आचरण), जो श्रुतियों ने कहे हैं,॥5॥

*** तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥ नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥6॥

भावार्थ:-

उन्हीं (धर्माचार रूपी) हरे तृणों (घास) को जब वह गो चरे और आस्तिक भाव रूपी छोटे बछड़े को पाकर वह पेन्हावे। निवृत्ति (सांसारिक विषयों से और प्रपंच से हटना) नोई (गो के दुहते समय पिछले पैर बाँधने की रस्सी) है, विश्वास (दूध दुहने का) बरतन है, निर्मल (निष्पाप) मन जो स्वयं अपना दास है। (अपने वश में है), दुहने वाला अहीर है॥6॥

*** परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥ तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै॥7॥

भावार्थ:-

हे भाई, इस प्रकार (धर्माचार में प्रवृत्त सात्विकी श्रद्धा रूपी गो से भाव, निवृत्ति और वश में किए हुए निर्मल मन की सहायता से) परम धर्ममय दूध दुहकर उसे निष्काम भाव रूपी अग्नि पर भली-भाँति औटावें। फिर क्षमा और संतोष रूपी हवा से उसे ठंडा करें और धैर्य तथा शम (मन का निग्रह) रूपी जामन देकर उसे जमावें॥7॥

*** मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥ तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥8॥

भावार्थ:-

तब मुदिता (प्रसन्नता) रूपी कमोरी में तत्व विचार रूपी मथानी से दम (इंद्रिय दमन) के आधार पर (दम रूपी खंभे आदि के सहारे) सत्य और सुंदर वाणी रूपी रस्सी लगाकर उसे मथें और मथकर तब उसमें से निर्मल, सुंदर और अत्यंत पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन निकाल लें॥8॥

दोहा :

*** जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ। बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥117 क॥

भावार्थ:-

तब योग रूपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्म रूपी ईंधन लगा दें (सब कर्मों को योग रूपी अग्नि में भस्म कर दें)। जब (वैराग्य रूपी मक्खन का) ममता रूपी मल, जल जाए, तब

(बचे हुए) ज्ञान रूपी घी को (निश्चयात्मिका) बुद्धि से ठंडा करें॥117 (क)॥

*** तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ। चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥117 ख॥

भावार्थ:-

तब विज्ञान रूपिणी बुद्धि उस (ज्ञान रूपी) निर्मल घी को पाकर उससे चित्त रूपी दीए को भरकर, समता की दीवट बनाकर, उस पर उसे दृढ़तापूर्वक (जमाकर) रखें॥117 (ख)॥

*** तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि। तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥117 ग॥

भावार्थ:-

(जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) तीनों अवस्थाएँ और (सत्त्व, रज और तम) तीनों गुण रूपी कपास से तुरीयावस्था रूपी रूई को निकालकर और फिर उसे सँवारकर उसकी सुंदर कड़ी बत्ती बनाएँ॥117 (ग)॥

सोरठा :

*** एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय। जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥117 घ॥

भावार्थ:-

इस प्रकार तेज की राशि विज्ञानमय दीपक को जलावें, जिसके समीप जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जाएँ॥117 (घ)॥

चौपाई :

*** सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥ आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥1॥

भावार्थ:-

'सोऽहमस्मि' (वह ब्रह्म मैं हूँ) यह जो अखंड (तैलधारावत् कभी न टूटने वाली) वृत्ति है, वही (उस ज्ञानदीपक की) परम प्रचंड दीपशिखा (लौ) है। (इस प्रकार) जब आत्मानुभव के सुख का सुंदर प्रकाश फैलता है, तब संसार के मूल भेद रूपी भ्रम का नाश हो जाता है,॥1॥

*** प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तब मिटइ अपारा॥ तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा॥2॥

भावार्थ:-

और महान् बलवती अविद्या के परिवार मोह आदि का अपार अंधकार मिट जाता है। तब वही (विज्ञानरूपिणी) बुद्धि (आत्मानुभव रूप) प्रकाश को पाकर हृदय रूपी घर में बैठकर उस जड़ चेतन की गाँठ को खोलती है॥2॥

*** छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥ छोरत ग्रंथ जानि खगराया। बिघ्न

नेक करइ तब माया॥3॥

भावार्थ:-

यदि वह (विज्ञान रूपिणी बुद्धि) उस गाँठ को खोलने पावे, तब यह जीव कृतार्थ हो, परंतु हे पक्षीराज गरुड़जी! गाँठ खोलते हुए जानकर माया फिर अनेकों विघ्न करती है॥3॥

*** रिद्धि-सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥ कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥4॥

भावार्थ:-

हे भाई! वह बहुत सी ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती है, जो आकर बुद्धि को लोभ दिखाती हैं और वे ऋद्धि-सिद्धियाँ कल (कला), बल और छल करके समीप जाती और आँचल की वायु से उस ज्ञान रूपी दीपक को बुझा देती हैं॥4॥

*** होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥ जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥5॥

भावार्थ:-

यदि बुद्धि बहुत ही सयानी हुई तो वह उन (ऋद्धि-सिद्धियों) को अहितकर (हानिकर) समझकर उनकी ओर ताकती नहीं। इस प्रकार यदि माया के विघ्नों से बुद्धि को बाधा न हुई तो फिर देवता उपाधि (विघ्न) करते हैं॥5॥

*** इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥ आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥6॥

भावार्थ:-

इंद्रियों के द्वार हृदय रूपी घर के अनेकों झरोखे हैं। वहाँ-वहाँ (प्रत्येक झरोखे पर) देवता थाना किए (अड्डा जमाकर) बैठे हैं। ज्यों ही वे विषय रूपी हवा को आते देखते हैं, त्यों ही हठपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं॥6॥

*** जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥ ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥7॥

भावार्थ:-

सज्यों ही वह तेज हवा हृदय रूपी घर में जाती है, त्यों ही वह विज्ञान रूपी दीपक बुझ जाता है। गाँठ भी नहीं छूटी और वह (आत्मानुभव रूप) प्रकाश भी मिट गया। विषय रूपी हवा से बुद्धि व्याकुल हो गई (सारा किया-कराया चौपट हो गया)॥7॥

*** इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥ बिषय समीर बुद्धि कत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥8॥

भावार्थ:-

इंद्रियों और उनके देवताओं को ज्ञान (स्वाभाविक ही) नहीं सुहाता, क्योंकि उनकी विषय-भोगों में

सदा ही प्रीति रहती है और बुद्धि को भी विषय रूपी हवा ने बावली बना दिया। तब फिर (दोबारा) उस ज्ञान दीप को उसी प्रकार से कौन जलावे?॥8॥

दोहा :

*** तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस। हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥118 क॥

भावार्थ:-

(इस प्रकार ज्ञान दीपक के बुझ जाने पर) तब फिर जीव अनेकों प्रकार से संसृति (जन्म-मरणादि) के क्लेश पाता है। हे पक्षीराज! हरि की माया अत्यंत दुस्तर है, वह सहज ही में तरी नहीं जा सकती॥118 (क)॥

*** कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक। होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥118 ख॥

भावार्थ:-

ज्ञान कहने (समझाने) में कठिन, समझने में कठिन और साधने में भी कठिन है। यदि घुणाक्षर न्याय से (संयोगवश) कदाचित् यह ज्ञान हो भी जाए, तो फिर (उसे बचाए रखने में) अनेकों विघ्न हैं॥118 (ख)॥

चौपाई :

*** ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥ जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥1॥

भावार्थ:-

ज्ञान का मार्ग कृपाण (दोधारी तलवार) की धार के समान है। हे पक्षीराज! इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती। जो इस मार्ग को निर्विघ्न निबाह ले जाता है, वही कैवल्य (मोक्ष) रूप परमपद को प्राप्त करता है॥1॥

*** अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥ राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥2॥

भावार्थ:-

संत, पुराण, वेद और (तंत्र आदि) शास्त्र (सब) यह कहते हैं कि कैवल्य रूप परमपद अत्यंत दुर्लभ है, किंतु हे गोसाईं! वही (अत्यंत दुर्लभ) मुक्ति श्री रामजी को भजने से बिना इच्छा किए भी जबर्दस्ती आ जाती है॥2॥

*** जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥ तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥3॥

भावार्थ:-

जैसे स्थल के बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों प्रकार के उपाय क्यों न करे। वैसे ही,

हे पक्षीराज! सुनिए, मोक्षसुख भी श्री हरि की भक्ति को छोड़कर नहीं रह सकता॥3॥

*** अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥ भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥4॥

भावार्थ:-

ऐसा विचार कर बुद्धिमान् हरि भक्त भक्ति पर लुभाए रहकर मुक्ति का तिरस्कार कर देते हैं। भक्ति करने से संसृति (जन्म-मृत्यु रूप संसार) की जड़ अविद्या बिना ही यंत्र और परिश्रम के (अपने आप) वैसे ही नष्ट हो जाती है,॥4॥

***भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥ असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥5॥

भावार्थ:-

जैसे भोजन किया तो जाता है तृप्ति के लिए और उस भोजन को जठराग्नि अपने आप (बिना हमारी चेष्टा के) पचा डालती है, ऐसी सुगम और परम सुख देने वाली हरि भक्ति जिसे न सुहावे, ऐसा मूढ़ कौन होगा?॥5॥

दोहा :

*** सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि। भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥119 क॥

भावार्थ:-

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! मैं सेवक हूँ और भगवान् मेरे सेव्य (स्वामी) हैं, इस भाव के बिना संसार रूपी समुद्र से तरना नहीं हो सकता। ऐसा सिद्धांत विचारकर श्री रामचंद्रजी के चरण कमलों का भजन कीजिए॥119 (क)॥

*** जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥119 ख॥

भावार्थ:-

जो चेतन को जड़ कर देता है और जड़ को चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ श्री रघुनाथजी को जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं॥119 (ख)॥

चौपाई :

*** कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई॥ राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥1॥

भावार्थ:-

मैंने ज्ञान का सिद्धांत समझाकर कहा। अब भक्ति रूपी मणि की प्रभुता (महिमा) सुनिए। श्री रामजी की भक्ति सुंदर चिंतामणि है। हे गरुड़जी! यह जिसके हृदय के अंदर बसती है,॥1॥

***परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥ मोह दरिद्र निकट नहिं आवा।

लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥2॥

भावार्थ:-

वह दिन-रात (अपने आप ही) परम प्रकाश रूप रहता है। उसको दीपक, घी और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिए। (इस प्रकार मणि का एक तो स्वाभाविक प्रकाश रहता है) फिर मोह रूपी दरिद्रता समीप नहीं आती (क्योंकि मणि स्वयं धनरूप है) और (तीसरे) लोभ रूपी हवा उस मणिमय दीप को बुझा नहीं सकती (क्योंकि मणि स्वयं प्रकाश रूप है, वह किसी दूसरे की सहायता से प्रकाश नहीं करती)॥2॥

*** प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥ खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥3॥

भावार्थ:-

(उसके प्रकाश से) अविद्या का प्रबल अंधकार मिट जाता है। मदादि पतंगों का सारा समूह हार जाता है। जिसके हृदय में भक्ति बसती है, काम, क्रोध और लोभ आदि दुष्ट तो उसके पास भी नहीं जाते॥3॥

*** गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥ दब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥4॥

भावार्थ:-

उसके लिए विष अमृत के समान और शत्रु मित्र हो जाता है। उस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता। बड़े-बड़े मानस रोग, जिनके वश होकर सब जीव दुःखी हो रहे हैं, उसको नहीं व्यापते॥4॥

*** राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥ चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥5॥

भावार्थ:-

श्री रामभक्ति रूपी मणि जिसके हृदय में बसती है, उसे स्वप्न में भी लेशमात्र दुःख नहीं होता। जगत में वे ही मनुष्य चतुरों के शिरोमणि हैं जो उस भक्ति रूपी मणि के लिए भलीभाँति यत्न करते हैं॥5॥

*** सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥ सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥6॥

भावार्थ:-

यद्यपि वह मणि जगत् में प्रकट (प्रत्यक्ष) है, पर बिना श्री रामजी की कृपा के उसे कोई पा नहीं सकता। उसके पाने के उपाय भी सुगम ही हैं, पर अभागे मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं॥6॥

*** पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥ मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥7॥

भावार्थ:-

वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं। श्री रामजी की नाना प्रकार की कथाएँ उन पर्वतों में सुंदर खानें हैं। संत पुरुष (उनकी इन खानों के रहस्य को जानने वाले) मर्मी हैं और सुंदर बुद्धि (खोदने वाली) कुदाल है। हे गरुड़जी! ज्ञान और वैराग्य ये दो उनके नेत्र हैं॥7॥

*** भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥ मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥8॥

भावार्थ:-

जो प्राणी उसे प्रेम के साथ खोजता है, वह सब सुखों की खान इस भक्ति रूपी मणि को पा जाता है। हे प्रभो! मेरे मन में तो ऐसा विश्वास है कि श्री रामजी के दास श्री रामजी से भी बढ़कर हैं॥8॥

*** राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥ सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥9॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी समुद्र हैं तो धीर संत पुरुष मेघ हैं। श्री हरि चंदन के वृक्ष हैं तो संत पवन हैं। सब साधनों का फल सुंदर हरि भक्ति ही है। उसे संत के बिना किसी ने नहीं पाया॥9॥

*** अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥10॥

भावार्थ:-

ऐसा विचार कर जो भी संतों का संग करता है, हे गरुड़जी उसके लिए श्री रामजी की भक्ति सुलभ हो जाती है॥10॥

दोहा :

*** ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं। कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥120 क॥

भावार्थ:-

ब्रह्म (वेद) समुद्र है, ज्ञान मंदराचल है और संत देवता हैं, जो उस समुद्र को मथकर कथा रूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्ति रूपी मधुरता बसी रहती है॥120 (क)॥

*** बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि। जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥120 ख॥

भावार्थ:-

वैराग्य रूपी ढाल से अपने को बचाते हुए और ज्ञान रूपी तलवार से मद, लोभ और मोह रूपी वैरियों को मारकर जो विजय प्राप्त करती है, वह हरि भक्ति ही है, हे पक्षीराज! इसे विचार कर देखिए॥120 (ख)॥

गरुड़जी के सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डि के उत्तर

चौपाई :

*** पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ॥। नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥1॥

भावार्थ:-

पक्षीराज गरुड़जी फिर प्रेम सहित बोले- हे कृपालु! यदि मुझ पर आपका प्रेम है, तो हे नाथ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों के उत्तर बखान कर कहिए॥1॥

*** प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा॥ बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी॥2॥

भावार्थ:-

हे नाथ! हे धीर बुद्धि! पहले तो यह बताइए कि सबसे दुर्लभ कौन सा शरीर है फिर सबसे बड़ा दुःख कौन है और सबसे बड़ा सुख कौन है, यह भी विचार कर संक्षेप में ही कहिए॥2॥

*** संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥ कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥3॥

भावार्थ:-

संत और असंत का मर्म (भेद) आप जानते हैं, उनके सहज स्वभाव का वर्णन कीजिए। फिर कहिए कि श्रुतियों में प्रसिद्ध सबसे महान् पुण्य कौन सा है और सबसे महान् भयंकर पाप कौन है॥3॥

*** मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥ तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती॥4॥

भावार्थ:-

फिर मानस रोगों को समझाकर कहिए। आप सर्वज्ञ हैं और मुझ पर आपकी कृपा भी बहुत है। (काकभुशुण्डिजी ने कहा-) हे तात अत्यंत आदर और प्रेम के साथ सुनिए। मैं यह नीति संक्षेप से कहता हूँ॥4॥

***नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥ नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥5॥

भावार्थ:-

मनुष्य शरीर के समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं। वह मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देने वाला है॥5॥

*** सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर॥ काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं॥6॥

भावार्थ:-

ऐसे मनुष्य शरीर को धारण (प्राप्त) करके भी जो लोग श्री हरि का भजन नहीं करते और नीच से भी नीच विषयों में अनुरक्त रहते हैं, वे पारसमणि को हाथ से फेंक देते हैं और बदले में काँच के टुकड़े ले लेते हैं॥6॥

*** नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥ पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥7॥

भावार्थ:-

जगत् में दरिद्रता के समान दुःख नहीं है तथा संतों के मिलने के समान जगत् में सुख नहीं है। और हे पक्षीराज! मन, वचन और शरीर से परोपकार करना, यह संतों का सहज स्वभाव है॥7॥

*** संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥ भूर्ज तरू सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला॥8॥

भावार्थ:-

संत दूसरों की भलाई के लिए दुःख सहते हैं और अभागे असंत दूसरों को दुःख पहुँचाने के लिए। कृपालु संत भोज के वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खाल तक उधड़वा लेते हैं)॥8॥

*** सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाई बिपति सहि मरई॥ खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥9॥

भावार्थ:-

किंतु दुष्ट लोग सन की भाँति दूसरों को बाँधते हैं और (उन्हें बाँधने के लिए) अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं। हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! सुनिए, दुष्ट बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरों का अपकार करते हैं॥9॥

*** पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं॥ दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥10॥

भावार्थ:-

वे पराई संपत्ति का नाश करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं, जैसे खेती का नाश करके ओले नष्ट हो जाते हैं। दुष्ट का अभ्युदय (उन्नति) प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु के उदय की भाँति जगत के दुःख के लिए ही होता है॥10॥

*** संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥ परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा॥11॥

भावार्थ:-

और संतों का अभ्युदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चंद्रमा और सूर्य का उदय विश्व भर के लिए सुखदायक है। वेदों में अहिंसा को परम धर्म माना है और परनिन्दा के समान भारी पाप

नहीं है॥11॥

*** हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई॥ द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥12॥

भावार्थ:-

शंकरजी और गुरु की निंदा करने वाला मनुष्य (अगले जन्म में) मेंढक होता है और वह हजार जन्म तक वही मेंढक का शरीर पाता है। ब्राह्मणों की निंदा करने वाला व्यक्ति बहुत से नरक भोगकर फिर जगत् में कौए का शरीर धारण करके जन्म लेता है॥12॥

*** सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥ होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥13॥

भावार्थ:-

जो अभिमानी जीव देवताओं और वेदों की निंदा करते हैं, वे रौरव नरक में पड़ते हैं। संतों की निंदा में लगे हुए लोग उल्लू होते हैं जिन्हें मोह रूपी रात्रि प्रिय होती है और ज्ञान रूपी सूर्य जिनके लिए बीत गया (अस्त हो गया) रहता है॥13॥

*** सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥ सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥14॥

भावार्थ:-

जो मूर्ख मनुष्य सब की निंदा करते हैं, वे चमगादड़ होकर जन्म लेते हैं। हे तात! अब मानस रोग सुनिए, जिनसे सब लोग दुःख पाया करते हैं॥14॥

*** मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥ काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥15॥

भावार्थ:-

सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है। उन व्याधियों से फिर और बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है॥15॥

*** प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥ बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥16॥

भावार्थ:-

यदि कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति कर लें (मिल जाएँ), तो दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनता से प्राप्त (पूर्ण) होने वाले जो विषयों के मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं, उनके नाम कौन जानता है (अर्थात् वे अपार हैं)॥16॥

चौपाई :

*** ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥ पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट

दुष्टता मन कुटिलई॥17॥

भावार्थ:-

ममता दाद है, ईर्षा (डाह) खुजली है, हर्ष-विषाद गले के रोगों की अधिकता है (गलगंड, कण्ठमाला या घेघा आदि रोग हैं), पराए सुख को देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है। दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है॥17॥

*** अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥ तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥18॥

भावार्थ:-

अहंकार अत्यंत दुःख देने वाला डमरू (गाँठ का) रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ (नसों का) रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदर वृद्धि (जलोदर) रोग है। तीन प्रकार (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं॥18॥

*** जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥19॥

भावार्थ:-

मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेकों बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ॥19॥

दोहा :

*** एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि। पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥121 क॥

भावार्थ:-

एक ही रोग के वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत से असाध्य रोग हैं। ये जीव को निरंतर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशा में वह समाधि (शांति) को कैसे प्राप्त करे?॥121 (क)॥

*** नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान। भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥121 ख॥

भावार्थ:-

नियम, धर्म, आचार (उत्तम आचरण), तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों औषधियाँ हैं, परंतु हे गरुड़जी! उनसे ये रोग नहीं जाते॥121 (ख)॥

चौपाई :

*** एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥ मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए॥1॥

भावार्थ:-

इस प्रकार जगत् में समस्त जीव रोगी हैं, जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग के दुःख से और भी दुःखी हो रहे हैं। मैंने ये थोड़े से मानस रोग कहे हैं। ये हैं तो सबको, परंतु इन्हें जान पाए हैं

कोई विरले ही॥1॥

*** जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥ बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥2॥

भावार्थ:-

प्राणियों को जलाने वाले ये पापी (रोग) जान लिए जाने से कुछ क्षीण अवश्य हो जाते हैं, परंतु नाश को नहीं प्राप्त होते। विषय रूप कुपथ्य पाकर ये मुनियों के हृदय में भी अंकुरित हो उठते हैं, तब बेचारे साधारण मनुष्य तो क्या चीज हैं॥2॥

*** राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा॥ सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥3॥

भावार्थ:-

यदि श्री रामजी की कृपा से इस प्रकार का संयोग बन जाए तो ये सब रोग नष्ट हो जाएँ। सद्गुरु रूपी वैद्य के वचन में विश्वास हो। विषयों की आशा न करे, यही संयम (परहेज) हो॥3॥

भजन महिमा

चौपाई :

*** रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥ एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥4॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी की भक्ति संजीवनी जड़ी है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवा के साथ लिया जाने वाला मधु आदि) है। इस प्रकार का संयोग हो तो वे रोग भले ही नष्ट हो जाएँ, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते॥4॥

*** जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥ सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥5॥

भावार्थ:-

हे गोसाईं! मन को निरोग हुआ तब जानना चाहिए, जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाए, उत्तम बुद्धि रूपी भूख नित नई बढ़ती रहे और विषयों की आशा रूपी दुर्बलता मिट जाए॥5॥

*** बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥ सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥6॥

भावार्थ:-

इस प्रकार सब रोगों से छूटकर जब मनुष्य निर्मल ज्ञान रूपी जल में स्नान कर लेता है, तब

उसके हृदय में राम भक्ति छा रहती है। शिवजी, ब्रह्माजी, शुकदेवजी, सनकादि और नारद आदि ब्रह्मविचार में परम निपुण जो मुनि हैं,॥6॥

*** सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥ श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥7॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! उन सबका मत यही है कि श्री रामजी के चरणकमलों में प्रेम करना चाहिए। श्रुति, पुराण और सभी ग्रंथ कहते हैं कि श्री रघुनाथजी की भक्ति के बिना सुख नहीं है॥7॥

*** कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहु हि मारा॥ फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥8॥

भावार्थ:-

कछुए की पीठ पर भले ही बाल उग आवें, बाँझ का पुत्र भले ही किसी को मार डाले, आकाश में भले ही अनेकों प्रकार के फूल खिल उठें, परंतु श्री हरि से विमुख होकर जीव सुख नहीं प्राप्त कर सकता॥8॥

*** तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥ अंधकारु बरु र बिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥9॥

भावार्थ:-

मृगतृष्णा के जल को पीने से भले ही प्यास बुझ जाए, खरगोश के सिर पर भले ही सींग निकल आवे, अन्धकार भले ही सूर्य का नाश कर दे, परंतु श्री राम से विमुख होकर जीव सुख नहीं पा सकता॥9॥

*** हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥ 10॥

भावार्थ:-

बर्फ से भले ही अग्नि प्रकट हो जाए (ये सब अनहोनी बातें चाहे हो जाएँ), परंतु श्री राम से विमुख होकर कोई भी सुख नहीं पा सकता॥10॥

दोहा :

*** बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल। बिनु हरि भजन न तव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥122 क॥

भावार्थ:-

जल को मथने से भले ही घी उत्पन्न हो जाए और बालू (को पेरने) से भले ही तेल निकल आवे, परंतु श्री हरि के भजन बिना संसार रूपी समुद्र से नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धांत अटल है॥122 (क)॥

*** मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन। अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन॥122 ख॥

भावार्थ:-

प्रभु मच्छर को ब्रह्मा कर सकते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा विचार कर चतुर पुरुष सब संदेह त्यागकर श्री रामजी को ही भजते हैं॥122 (ख)॥ श्लोक :

*** विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे। हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते॥122 ग॥

भावार्थ:-

मैं आपसे भली-भाँति निश्चित किया हुआ सिद्धांत कहता हूँ मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं हैं कि जो मनुष्य श्री हरि का भजन करते हैं, वे अत्यंत दुस्तर संसार सागर को (सहज ही) पार कर जाते हैं॥122 (ग)॥

चौपाई :

*** कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा॥ श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥1॥

भावार्थ:-

हे नाथ! मैंने श्री हरि का अनुपम चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप से कहा। हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी ! श्रुतियों का यही सिद्धांत है कि सब काम भुलाकर (छोड़कर) श्री रामजी का भजन करना चाहिए॥1॥

*** प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही॥ तुम्ह बिग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु श्री रघुनाथजी को छोड़कर और किसका सेवन (भजन) किया जाए, जिनका मुझ जैसे मूर्ख पर भी ममत्व (स्नेह) है। हे नाथ! आप विज्ञान रूप हैं, आपको मोह नहीं है। आपने तो मुझ पर बड़ी कृपा की है॥2॥

रामायण माहात्म्य, तुलसी विनय और फलस्तुति

*** पूँछिहु राम कथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि॥ सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥3॥

भावार्थ:-

जो आपने मुझ से शुकदेवजी, सनकादि और शिवजी के मन को प्रिय लगने वाली अति पवित्र रामकथा पूछी। संसार में घड़ी भर का अथवा पल भर का एक बार का भी सत्संग दुर्लभ है॥3॥

*** देखु गरुड़ निज हृदयँ बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी॥ सकुनाधम सब भाँति अपावन।

प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन॥4॥
भावार्थ:-
हे गरुड़जी! अपने हृदय में विचार कर देखिए, क्या मैं भी श्री रामजी के भजन का अधिकारी हूँ? पक्षियों में सबसे नीच और सब प्रकार से अपवित्र हूँ, परंतु ऐसा होने पर भी प्रभु ने मुझको सारे जगत् को पवित्र करने वाला प्रसिद्ध कर दिया (अथवा प्रभु ने मुझको जगत्प्रसिद्ध पावन कर दिया)॥4॥
दोहा :
*** आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन। निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन॥123 क॥
भावार्थ:-
यद्यपि मैं सब प्रकार से हीन (नीच) हूँ, तो भी आज मैं धन्य हूँ, अत्यंत धन्य हूँ, जो श्री रामजी ने मुझे अपना 'निज जन' जानकर संत समागम दिया (आपसे मेरी भेंट कराई)॥123 (क)॥
*** नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ। चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ॥123 ख॥
भावार्थ:-
हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कहा, कुछ भी छिपा नहीं रखा। (फिर भी) श्री रघुवीर के चरित्र समुद्र के समान हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है?॥123 (ख)॥
चौपाई :
*** सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥ महिमा निगम नेत करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥1॥
भावार्थ:-
श्री रामचंद्रजी के बहुत से गुण समूहों का स्मरण कस्करके सुजान भुशुण्डिजी बार-बार हर्षित हो रहे हैं। जिनकी महिमा वेदों ने 'नेति-नेति' कहकर गाई है, जिनका बल, प्रताप और प्रभुत्व (सामर्थ्य) अतुलनीय है,॥1॥
*** सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥ अस सुभाउ कहुँ सुनउँन देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥2॥
भावार्थ:-
जिन श्री रघुनाथजी के चरण शिवजी और ब्रह्माजी के द्वारा पूज्य हैं, उनकी मुझ पर कृपा होनी उनकी परम कोमलता है। किसी का ऐसा स्वभाव कहीं न सुनता हूँ, न देखता हूँ। अतः हे पक्षीराज गरुड़जी! मैं श्री रघुनाथजी के समान किसे गिनूँ (समझूँ)?॥2॥
*** साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी॥ जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी॥3॥

भावार्थ:-

साधक, सिद्ध, जीवनमुक्त, उदासीन (विरक्त), कवि, विद्वान, कर्म (रहस्य) के ज्ञाता, संन्यासी, योगी, शूरवीर, बड़े तपस्वी, ज्ञानी, धर्मपरायण, पंडित और विज्ञानी-॥3॥

*** तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥ सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी॥4॥

भावार्थ:-

ये कोई भी मेरे स्वामी श्री रामजी का सेवन (भजन) किए बिना नहीं तर सकते। मैं, उन्हीं श्री रामजी को बार-बार नमस्कार करता हूँ। जिनकी शरण जाने पर मुझ जैसे पापराशि भी शुद्ध (पापरहित) हो जाते हैं, उन अविनाशी श्री रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥4॥

दोहा :

*** जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥124 क॥

भावार्थ:-

जिनका नाम जन्म-मरण रूपी रोग की (अव्यर्थ) औषध और तीनों भयंकर पीड़ाओं (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों) को हरने वाला है, वे कृपालु श्री रामजी मुझ पर और आप पर सदा प्रसन्न रहें॥124 (क)॥

*** सुनि भुसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह। बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ बिगत संदेह॥124 ख॥

भावार्थ:-

भुशुण्डिजी के मंगलमय वचन सुनकर और श्री रामजी के चरणों में उनका अतिशय प्रेम देखकर संदेह से भलीभाँति छूटे हुए गरुड़जी प्रेमसहित वचन बोले॥124 (ख)॥

चौपाई :

*** मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी॥ राम चरन नूतन रत भई। माया जनित बिपति सब गई॥1॥

भावार्थ:-

श्री रघुवीर के भक्ति रस में सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। श्री रामजी के चरणों में मेरी नवीन प्रीति हो गई और माया से उत्पन्न सारी विपत्ति चली गई॥1॥

*** मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए॥ मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा॥2॥

भावार्थ:-

मोह रूपी समुद्र में डूबते हुए मेरे लिए आप जहाज हुए। हे नाथ आपने मुझे बहुत प्रकार के सुख दिए (परम सुखी कर दिया)। मुझसे इसका प्रत्युपकार (उपकार के बदले में उपकार) नहीं हो

सकता। मैं तो आपके चरणों की बार-बार वंदना ही करता हूँ॥2॥

*** पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी॥ संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥3॥

भावार्थ:-

आप पूर्णकाम हैं और श्री रामजी के प्रेमी हैं। हे तात! आपके समान कोई बड़भागी नहीं है। संत, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी- इन सबकी क्रिया पराए हित के लिए ही होती है॥3॥

*** संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥ निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर सुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥4॥

भावार्थ:-

संतों का हृदय मक्खन के समान होता है, ऐसा कवियों ने कहा है, परंतु उन्होंने (असली बात) कहना नहीं जाना, क्योंकि मक्खन तो अपने को ताप मिलने से पिघलता है और परम पवित्र संत दूसरों के दुःख से पिघल जाते हैं॥4॥

*** जीवन जन्म सफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ॥ जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर॥5॥

भावार्थ:-

मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया। आपकी कृपा से सब संदेह चला गया। मुझे सदा अपना दास ही जानिएगा। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! पक्षी श्रेष्ठ गरुड़जी बार-बार ऐसा कह रहे हैं॥5॥

दोहा :

***तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर। गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर॥125 क॥

भावार्थ:-

उन (भुशुण्डिजी) के चरणों में प्रेमसहित सिर नवाकर और हृदय में श्री रघुवीर को धारण करके धीरबुद्धि गरुड़जी तब वैकुंठ को चले गए॥125 (क)॥

*** गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन। बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥125 ख॥

भावार्थ:-

हे गिरिजे! संत समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है। पर वह (संत समागम) श्री हरि की कृपा के बिना नहीं हो सकता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं॥125 (ख)॥

चौपाई :

*** कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा॥ प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा॥1॥

भावार्थ:-

मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, जिसे कानों से सुनते ही भवपाश (संसार के बंधन) छूट जाते हैं और शरणागतों को (उनके इच्छानुसार फल देने वाले) कल्पवृक्ष तथा दया के समूह श्री रामजी के चरणकमलों में प्रेम उत्पन्न होता है॥1॥

***मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई॥ तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥2॥

भावार्थ:-

जो कान और मन लगाकर इस कथा को सुनते हैं, उनके मन, वचन और कर्म (शरीर) से उत्पन्न सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थ यात्रा आदि बहुत सेसाधन, योग, वैराग्य और ज्ञान में निपुणता,॥2॥

*** नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥ भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥3॥

भावार्थ:-

अनेकों प्रकार के कर्म, धर्म, व्रत और दान, अनेकों संयम दम, जप, तप और यज्ञ, प्राणियों पर दया, ब्राह्मण और गुरु की सेवा, विद्या, विनय और विवेक की बड़ाई (आदि)-॥3॥

*** जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥ सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपाँ काहूँ एक पाई॥4॥

भावार्थ:-

जहाँ तक वेदों ने साधन बतलाए हैं, हे भवानी! उन सबका फल श्री हरि की भक्ति ही है, किंतु श्रुतियों में गाई हुई वह श्री रघुनाथजी की भक्ति श्री रामजी की कृपा से किसी एक (विरले) ने ही पाई है॥4।

दोहा :

*** मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास। जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास॥126॥

भावार्थ:-

किंतु जो मनुष्य विश्वास मानकर यह कथा निरंतर सुनते हैं वे बिना ही परिश्रम उस मुनि दुर्लभ हरि भक्ति को प्राप्त कर लेते हैं॥126॥

चौपाई :

*** सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥ धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता॥1॥

भावार्थ:-

जिसका मन श्री रामजी के चरणों में अनुरक्त है, वही सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) है, वही गुणी है, वही ज्ञानी है। वही पृथ्वी का भूषण, पण्डित और दानी है। वही धर्मपरायण है और वही कुल

का रक्षक है॥1॥

***नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥ सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥2॥

भावार्थ:-

जो छल छोड़कर श्री रघुवीर का भजन करता है, वही नीति में निपुण है, वही परम् बुद्धिमान है। उसी ने वेदों के सिद्धांत को भली-भाँति जाना है। वही कवि, वही विद्वान् तथा वही रणधीर है॥2॥

*** धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी॥ धन्य सो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥3॥

भावार्थ:-

वह देश धन्य है, जहाँ श्री गंगाजी हैं, वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत धर्म का पालन करती है। वह राजा धन्य है जो न्याय करता है और वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म से नहीं डिगता है॥3॥

*** सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥ धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥4॥

भावार्थ:-

वह धन धन्य है, जिसकी पहली गति होती है (जो दान देने में व्यय होता है) वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्य में लगी हुई है। वही घड़ी धन्य है जब सत्संग हो और वही जन्म धन्य है जिसमें ब्राह्मण की अखण्ड भक्ति हो॥4॥ (धन की तीन गतियाँ होती हैं- दान, भोग और नाश। दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश नीच गति है। जो पुरुष न देता है, न भोगता है, उसके धन की तीसरी गति होती है।) दोहा:

*** सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत। श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥127॥

भावार्थ:-

हे उमा! सुनो वह कुल धन्य है, संसारभर के लिए पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्री रघुवीर परायण (अनन्य रामभक्त) विनम्र पुरुष उत्पन्न हों॥127॥

चौपाई :

*** मति अनुरूप कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी॥ तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई॥1॥

भावार्थ:-

मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार यह कथा कही, यद्यपि पहले इसको छिपाकर रखा था। जब तुम्हारे मन में प्रेम की अधिकता देखी तब मैंने श्री रघुनाथजी की यह कथा तुमको सुनाई॥1॥

*** यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि॥ कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजइ सचराचर स्वामिहि॥2॥

भावार्थ:-

यह कथा उनसे न कहनी चाहिए जो शठ (धूर्त) हों, हठी स्वभाव के हों और श्री हरि की लीला को मन लगाकर न सुनते हों। लोभी, क्रोधी और कामी को, जो चराचर के स्वामी श्री रामजी को नहीं भजते, यह कथा नहीं कहनी चाहिए॥2॥

*** द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ॥ रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी॥3॥

भावार्थ:-

ब्राह्मणों के द्रोही को, यदि वह देवराज (इन्द्र) के समान ऐश्वर्यवान् राजा भी हो, तब भी यह कथा न सुनानी चाहिए। श्री रामकथा के अधिकारी वे ही हैं जिनको सत्संगति अत्यंत प्रिय है॥3॥

*** गुर पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई॥ ता कहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई॥4॥

भावार्थ:-

जिनकी गुरु के चरणों में प्रीति है, जो नीतिपरायण हैं और ब्राह्मणों के सेवक हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं और उसको तो यह कथा बहुत ही सुख देने वाली है जिसको श्री रघुनाथजी प्राण के समान प्यारे हैं॥4॥

दोहा :

*** राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान। भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥128॥

भावार्थ:-

जो श्री रामजी के चरणों में प्रेम चाहता हो या मोक्षपद चाहता हो, वह इस कथा रूपी अमृत को प्रेमपूर्वक अपने कान रूपी दोने से पिए॥128॥

चौपाई :

*** राम कथा गिरिजा मैं बरनी। कलि मल समनि मनोमल हरनी॥ संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी॥1॥

भावार्थ:-

हे गिरिजे! मैंने कलियुग के पापों का नाश करने वाली और मन के मल को दूर करने वाली रामकथा का वर्णन किया। यह रामकथा संसृति (जन्म-मरण) रूपी रोग के (नाश के) लिए संजीवनी जड़ी है, वेद और विद्वान पुरुष ऐसा कहते हैं॥1॥

*** एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥ अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई॥2॥

भावार्थ:-

इसमें सात सुंदर सीढ़ियाँ हैं, जो श्री रघुनाथजी की भक्ति को प्राप्त करने के मार्ग हैं। जिस पर

श्री हरि की अत्यंत कृपा होती है, वही इस मार्ग पर पैर रखता है॥2॥

*** मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा॥ कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥3॥

भावार्थ:-

जो कपट छोड़कर यह कथा गाते हैं, वे मनुष्य अपनी मनःकामना की सिद्धि पा लेते हैं, जो इसे कहते-सुनते और अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे संसार रूपी समुद्र को गो के खुर से बने हुए गड्ढे की भाँति पार कर जाते हैं॥3॥

*** सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई॥ नाथ कृपाँ मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा॥4॥

भावार्थ:-

(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-) सब कथा सुनकर श्री पार्वतीजी के हृदय को बहुत ही प्रिय लगी और वे सुंदर वाणी बोलीं- स्वामी की कृपा से मेरा संदेह जाता रहा और श्री रामजी के चरणों में नवीन प्रेम उत्पन्न हो गया॥4॥

दोहा :

*** मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस। उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस॥129॥

भावार्थ:-

हे विश्वनाथ! आपकी कृपा से अब मैं कृतार्थ हो गई। मुझमें दृढ़ राम भक्ति उत्पन्न हो गई और मेरे संपूर्ण क्लेश बीत गए (नष्ट हो गए)॥129॥

चौपाई :

*** यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥ भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥1॥

भावार्थ:-

शम्भु-उमा का यह कल्याणकारी संवाद सुख उत्पन्न करने वाला और शोक का नाश करने वाला है। जन्म-मरण का अंत करने वाला, संदेहों का नाश करने वाला, भक्तों को आनंद देने वाला और संत पुरुषों को प्रिय है॥1॥

*** राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं॥ रघुपति कृपाँ जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा॥2॥

भावार्थ:-

जगत् में जो (जितने भी) रामोपासक हैं, उनको तो इस रामकथा के समान कुछ भी प्रिय नहीं है। श्री रघुनाथजी की कृपा से मैंने यह सुंदर और पवित्र करने वाला चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है॥2॥

*** एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥ रामहि सुमिरिअ गाइअ

रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥3॥
भावार्थ:-
(तुलसीदासजी कहते हैं-) इस कलिकाल में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजन आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। बस, श्री रामजी का ही स्मरण करना, श्री रामजी का ही गुण गाना और निरंतर श्री रामजी के ही गुणसमूहों को सुनना चहिए॥3॥
*** जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥ ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥4॥
भावार्थ:-
पतितों को पवित्र करना जिनका महान् (प्रसिद्ध) बाना है, ऐसा कवि, वेद, संत और पुराण गाते हैं- रेमन! कुटिलता त्याग कर उन्हीं को भज। श्री राम को भजने से किसने परम गति नहीं पाई?॥4॥
छंद :
***पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना। गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥ आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे। कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥1॥
भावार्थ:-
अरे मूर्ख मन! सुन, पतितों को भी पावन करने वाले श्री राम को भजकर किसने परमगति नहीं पाई? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुत से दुष्टों को उन्होंने तार दिया। आभीर, यवन, किरात, खस, श्वपच (चाण्डाल) आदि जो अत्यंत पाप रूप ही हैं, वे भी केवल एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन श्री रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥1॥
*** रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं। कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥ सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै। दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै॥2॥
भावार्थ:-
जो मनुष्य रघुवंश के भूषण श्री रामजी का यह चरित्र कहते हैं सुनते हैं और गाते हैं, वे कलियुग के पाप और मन के मल को धोकर बिना ही परिश्रम श्री रामजी के परम धाम को चले जाते हैं। (अधिक क्या) जो मनुष्य पाँच-सात चौपाइयों को भी मनोहर जानकर (अथवा रामायण की चौपाइयों को श्रेष्ठ पंच (कर्तव्याकर्तव्य का सच्चा निर्णायक) जानकर उनको हृदय में धारण कर लेता है, उसके भी पाँच प्रकार की अविद्याओं से उत्पन्न विकारों को श्री रामजी हरण कर लेते हैं, (अर्थात् सारे रामचरित्र की तो बात ही क्या है, जो पाँच-सात चौपाइयों को भी समझकर उनका अर्थ हृदय में धारण कर लेते हैं, उनके भी अविद्याजनित सारे क्लेश श्री रामचंद्रजी हर लेते हैं)॥2॥

*** सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो। सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को॥ जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ। पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभुनाहीं कहूँ॥3॥

भावार्थ:-

(परम) सुंदर, सुजान और कृपानिधान तथा जो अनाथों पर प्रेम करते हैं, ऐसे एक श्री रामचंद्रजी ही हैं। इनके समान निष्काम (निःस्वार्थ) हित करने वाला (सुहृद्) और मोक्ष देने वाला दूसरा कौन है? जिनकी लेशमात्र कृपा से मंदबुद्धि तुलसीदास ने भी परम शांति प्राप्त कर ली, उन श्री रामजी के समान प्रभु कहीं भी नहीं हैं॥3॥

दोहा :

*** मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर। अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥130 क॥

भावार्थ:-

हे श्री रघुवीर! मेरे समान कोई दीन नहीं है और आपके समान कोई दीनों का हित करने वाला नहीं है। ऐसा विचार कर हे रघुवंशमणि! मेरे जन्म-मरण के भयानक दुःख का हरण कर लीजिए॥130 (क)॥

*** कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम। तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥130 ख॥

भावार्थ:-

जैसे कामी को स्त्री प्रिय लगती है और लोभी को जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथजी। हे रामजी! आप निरंतर मुझे प्रिय लगिए॥130 (ख)॥ श्लोक :

*** यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्तयै तु रामायणम्। मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये। भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥1॥

भावार्थ:-

श्रेष्ठ कवि भगवान् श्री शंकरजी ने पहले जिस दुर्गम मानस-रामायण की, श्री रामजी के चरणकमलों में नित्य-निरंतर (अनन्य) भक्ति प्राप्त होने के लिए रचना की थी, उस मानस-रामायण को श्री रघुनाथजी के नाम में निरत मानकर अपने अंतःकरण के अंधकार को मिटाने के लिए तुलसीदास ने इस मानस के रूप में भाषाबद्ध किया॥1॥

*** पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं। मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्। श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥2॥

भावार्थ:-

यह श्री रामचरित मानस पुण्य रूप, पापों का हरण करने वाला, सदा कल्याणकारी, विज्ञान और

भक्ति को देने वाला, माया मोह और मल का नाश करने वाला, परम निर्मल प्रेम रूपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानसरोवर में गोता लगाते हैं, वे संसाररूपी सूर्य की अति प्रचण्ड किरणों से नहीं जलते॥2॥ मासपारायण, तीसवाँ विश्राम नवाह्नपारायण, नवाँ विश्राम इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने सप्तमः सोपानः समाप्तः। कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले श्री रामचरित मानस का यह सातवाँ सोपान समाप्त हुआ।

रामचरित्मानस

उत्तरकाण्ड

श्रीरामायणजी की आरती

*** आरती श्रीरामायणजी की। कीरति कलित ललित सिय पी की।। गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद। बालमीक बिग्यान बिसारद।। सुक सनकादि सेष अरु सारद। बरनि पवनसुत कीरति नीकी।। गावत बेद पुरान अष्टदस। छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस।। मुनि जन धन संतन को सरबस। सार अंस संमत सबही की।। गावत संतत संभु भवानी। अरु घट संभव मुनि बिग्यानी।▷ ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी। कागभुसुंडि गरुड के ही की।। कलिमल हरनि बिषय रस फीकी। सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की।। दलन रोग भव मूरि अमी की। तात मात सब बिधि तुलसी की।।